[1990] 2 उम० नि० प० 802

तिनसुखिया इलैक्ट्रिक सप्लाई कंपनी लिमिटेड

बनाम

असम राज्य और अन्य

13 अप्रैल, 1989

मु० न्या० आर० एस० पाठक, न्या० सव्यसाची मुखर्जी, एस० नटराजन, एम० एन० वेंकटाचलय्या और एस० रंगनाथन

संविधान, 1950—अनुच्छेद 31-ग और 39 [सपठित तिनसुखिया और डिब्रुगढ़ विद्युत प्रदाय उपक्रम (अर्जन) अधिनियम, 1973 [तिनसुखिया एंड डिब्रुगढ़ इलैक्ट्रिक सप्लाई अंडरटेकिंग्स (एक्विजीशन) ऐक्ट, 1973] (1973 का 10) की धारा 23] —1973 के असम अधिनियम 10 की धारा 23 के अधीन यह घोषणा की जाना कि अधिनियम राज्य की नीति के निदेशक तत्वों को प्रभावी करने के लिए है—घोषणा की सांविधानिकता—उक्त अधिनियम का अनुच्छेद 39(ख) के उद्देश्यों के साथ सीधा संबंध है अतः उसे अनुच्छेद 31-ग के अधीन संरक्षण प्राप्त है—यह विधान आभासी विधान नहीं है, अतः विधिमान्य है।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 31-ग और 39—विधि और अनुच्छेद 39 के उद्देश्यों के बीच संबंध के बारे में विधायी घोषणा अनिश्चायक और न्यायालय के विचारयोग्य है—न्यायालय आभासी विधान या शक्ति के दुरुपयोग के अभिकथन की, यदि आवश्यक हो, तो परीक्षा कर सकता है।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 39(ख)—'समुदाय के भौतिक संसाधन'—इनके अंतर्गत प्राइवेट स्वामित्व के भौतिक संसाधन भी आते हैं—गैर सरकारी उपक्रमों द्वारा उत्पादित और वितरित विद्युत ऊर्जा इस अभिव्यक्ति के अंतर्गत आती है।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 39 (ख)—भौतिक संसाधनों का वितरण—इसमें राष्ट्रीयकरण सम्मिलित है।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 39 (ख) और 31-ग—राष्ट्रीयकरण—विद्युत उपक्रमों के अर्जन के लिए विधान—उपक्रमों को संदेय 'रकम' के अनुमान के लिए उपबंध—ये उपबंध राष्ट्रीयकरण स्कीम का एकीकृत भाग हैं, अतः अनुच्छेद 31-ग लागू होता है—राष्ट्रीयकरण के लिए आर्थिक प्रतिफल न्यायालय के विचारयोग्य नहीं है।

भारतीय विद्युत अधिनियम, 1910 (1910 का 9)—धारा 5(2), 6(7) और 7-क [भारतीय विद्युत (असम संशोधन) अधिनियम, 1973 [इंडियन इलैक्ट्रिसिटी (असम अमेंडमेंट) ऐक्ट, 1973] (1973 का असम अधिनियम 9) की धारा 2, 3 और 4 द्वारा यथा संशोधित]—उपक्रम के कानूनी क्रय की दशा में अनुज्ञप्तिधारी को संदेय 'रकम' के अनुमान के आधार पर संशोधन विधिमान्य है।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 39(ख)—राष्ट्रीयकरण—विद्युत उपक्रमों का अर्जन—जब उपक्रम पहले ही दक्षता से और लोक उपयोगिता के लिए कार्य कर रहे हों तब यह प्रश्न नहीं उठाया जा सकता कि अर्जन न्यायोचित नहीं है।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 39(ख)—राष्ट्रीयकरण—विद्युत उपक्रमों का अर्जन—सरकार/विद्युत बोर्ड द्वारा अर्जन करने से पूर्व अनुज्ञप्तियों के निबंधनों के अनुसार कानूनी उपबंधों के अधीन उपक्रमों को क्रय करने के लिए विकल्प का प्रयोग—ऐसे विकल्प का प्रयोग करने पर उपक्रम में अनुज्ञप्तिधारियों के सांपत्तिक अधिकार और हित मात्र अनुयोज्य दावे या वाद-वस्तु में परिवर्तित और स्फाटित नहीं हो जाते—किसी लोक प्रयोजन की पूर्ति किए बिना मात्र वाद-वस्तु के अर्जन के आधार पर पश्चात्वर्ती अर्जन को दी गई चुनौती का समर्थन नहीं किया जा सकता।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 39 (ख), 31(2) (जैसा वह निरसन के पूर्व विद्यमान था) और 31-ग—उपक्रमों के अर्जन के लिए अधिनियम को, जिसे अनुच्छेद 31-ग के अधीन संरक्षण प्राप्त है, इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती कि अर्जन के लिए संदेय रकम भ्रामक होने के कारण अनुच्छेद 31(2) का अतिक्रमण करती है—जब 'रकम' की संगणना बही-मूल्य की संकल्पना पर आधारित हो तो इसे भ्रामक अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 39(ख) और 31(2) (जैसा वह निरसन के पूर्व विद्यमान था) [सपठित भारतीय विद्युत अधिनियम, 1910 की धारा 7-क (2)] [भारतीय विद्युत (असम संशोधन) अधिनियम, 1973 (1973 का 9) द्वारा यथा संशोधित]—उपक्रम का बही मूल्य—उपभोक्ताओं के व्यय पर सन्निर्मित सेवा लाइनों का मूल्यांकन से अपवर्जन—इस अपवर्जन के कारण 'रकम' के अवधारण के लिए सिद्धांत मनमाना, अयुक्तियुक्त, न्यायालय द्वारा विचार किए जाने के अयोग्य और अधिकारातीत नहीं हो जाता, चाहे सेवा लाइनें धारा 2 (ढ) में 'संकर्म' की परिभाषा के अंतर्गत आती हों।

तिनसुखिया और डिब्रुगढ़ विद्युत प्रदाय उपक्रम (एक्विजीशन) अधिनियम, 1973 [तिनसुखिया एंड डिब्रुगढ़ इलैक्ट्रिक सप्लाई अंडरटेकिंग्स (एक्विजीशन) ऐक्ट, 1973] (1973 का 10)—धारा 9 (i) [सपठित संविधान, 1950 का अनुच्छेद 39 (ख) और 31 (2) (निरसन के पूर्व यथा विद्यमान)]—कुल रकम में से आरक्षितियों में 'अवशिष्ट रकमों' की कटौती, 'जहां तक ऐसी रकमें' अनुज्ञप्तिधारी द्वारा सरकार को 'संदत्त न कर दी गई हों'—यह उपबंध अयुक्तियुक्त और मनमाना नहीं है।

तिनसुखिया और डिब्रुगढ़ विद्युत प्रदाय उपक्रम (अर्जन) अधिनियम, 1973 [तिनसुखिया एंड डिब्रुगढ़ इलैक्ट्रिक सप्लाई अंडरटेकिंग्स (एक्विजीशन) ऐक्ट, 1973 (1973 का 10)]—धारा 11 (3) [सपठित संविधान, 1950 का अनुच्छेद 39 (ख) और 31(2) (निरसन के पूर्व यथा विद्यमान)]—निहित होने की तारीख के पश्चात् सरकार द्वारा छंटनी किए गए कर्मचारियों को संदाय करने का अनुज्ञप्तिधारी का दायित्व और अर्जन के लिए संदेय 'रकम' में से ऐसी राशियों की कटौती मनमानी और अयुक्तियुक्त नहीं है।

तिनसुखिया और डिब्रुगढ़ विद्युत प्रदाय उपक्रम (अर्जन) अधिनियम, 1973 [तिनसुखिया एंड डिब्रुगढ़ इलैक्ट्रिक सप्लाई अंडरटेकिंग्स (एक्विजीशन) ऐक्ट, 1973

(1973 का 10)]—धारा 9 (ग), (घ) और (च) [सपठित संविधान, 1950 का अनुच्छेद 39 (ख) और 31 (2) (निरसन के पूर्व यथा विद्यमान)]—लेनदारों को रकम का संदाय करने की सरकार की ओर से किसी तत्समान कानूनी बाध्यता के बिना 'रकम' में से चालू रहने वाले दायित्वों की कटौती— प्रयोजनों को ध्यान में रखते हुए ऐसी कटौती अयुक्तियुक्त नहीं है।

तिनसुखिया और डिब्रुगढ़ विद्युत प्रदाय उपक्रम (अर्जन) अधिनियम, 1973 [तिनसुखिया एंड डिब्रुगढ़ इलैक्ट्रिक सप्लाई (अंडरटेकिंग्स) ऐक्ट, 1973 (1973 का 10)]— धारा 9 का खंड (ग), (घ) और (ङ) [सपठित संविधान, 1950 का अनुच्छेद 39 (ख) और 31 (2) (निरसन के पूर्व यथा विद्यमान)]—धारा 9 (ग), (घ) और (ङ) के अधीन कटौती की जाने वाली रकमों के अवधारण के लिए तंत्र के अभाव में या धारा 8 के अधीन कटौती की जाने वाली हानि के आधार पर ही अधिनियम के आक्षेपित उपबंध अव्यावहारिक नहीं हो जाते—धारा 10 के अधीन युक्तियुक्त रूप से पर्याप्त-तंत्र उपलभ्य हो जाएगा।

तिनसुखिया और डिब्रुगढ़ विद्युत प्रदाय उपक्रम (अर्जन) अधिनियम, 1973 [तिनसुखिया एंड डिब्रुगढ़ इलैक्ट्रिक सप्लाई अंडरटेकिंग्स (एक्विजीशन) ऐक्ट, 1973 (1973 का 10)]—धारा 20 [सपठित संविधान, 1950 का अनुच्छेद 39(ख) और 31(2) (निरसन के पूर्व यथा विद्यमान)]—उपधारा (1) के खंड (क) से (घ) में प्रगणित विवादों के अलावा विवादों के निपटारे के लिए तंत्र के अभाव के आधार पर ही अधिनियम के आक्षेपित उपबंध अव्यावहारिक नहीं हो जाते—'विशेष अधिकारी' के विनिश्चय के पश्चात् भी विवादों के विनिश्चय के लिए माध्यस्थम् मंच मौजूद है।

कानूनों का निर्वचन—किसी कानून के उपबंध का अर्थान्वयन अर्थपूर्ण रूप से किया जाना चाहिए जिससे कि कानून व्यावहारिक बन सके और वह निःसार न बन जाए—किसी कानून के उपबंध का निर्वचन करते समय न्यायालय को विधायी आशय अभिनिश्चित कर लेना चाहिए।

याची-कंपनियों अर्थात् तिनसुखिया इलैक्ट्रिक सप्लाई कंपनी लिमिटेड और डिब्रुगढ़ इलैक्ट्रिक सप्लाई कंपनी लिमिटेड को भारतीय विद्युत अधिनियम, 1910 के उपबंधों के अधीन अनुज्ञप्त क्षेत्रों में अर्थात् तिनसुखिया और डिब्रुगढ़ नगरपालिक बोर्डों के क्षेत्रों में विद्युत प्रदाय के लिए अनुज्ञप्तियां प्रदान की गई थीं। 'डिब्रुगढ़ कंपनी' को 'डिब्रुगढ़ विद्युत अनुज्ञप्ति, 1928', अनुदान में विशिष्टतया वर्णित निबंधनों और शर्तों पर, प्रदान की गई थी जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह सम्मिलित किया गया था कि राज्य को 13-2-1928 से, जो अनुज्ञप्ति के प्रारंभ होने की तारीख है, 50 वर्ष के अवसान पर और तत्पश्चात् 20 वर्ष की पश्चात्वर्ती प्रत्येक कालावधि के अवसान पर उपक्रम को क्रय करने का विकल्प होगा। इसी प्रकार 'तिनसुखिया कंपनी' को 'तिनसुखिया विद्युत अनुज्ञप्ति, 1954' प्रदान की गई थी जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ एक शर्त सम्मिलित की गई थी कि असम राज्य 21-7-1954 से, जो अनुज्ञप्ति के प्रारंभ होने की तारीख है, 20 वर्ष के अवसान पर और तत्पश्चात् प्रत्येक पश्चात्वर्ती 10 वर्षीय कालावधि के अवसान पर विद्युत उपक्रम को क्रय करने के विकल्प का प्रयोग कर सकता है। असम राज्य विद्युत बोर्ड ने आरंभ में पहले बातचीत द्वारा और बाद में क्रय करने के विकल्प का प्रयोग करके उपक्रमों को अर्जित करने के लिए कदम उठाए। किंतु

अंततोगत्वा भारतीय विद्युत (असम संशोधन) अध्यादेश, 1972 [इंडियन इलैक्ट्रिसिटी (असम अमेंडमेंट) आर्डिनेंस, 1972] और तिनसुखिया और डिब्रूगढ़ विद्युत प्रदाय उपक्रम (अर्जन) अध्यादेश, 1972 [तिनसुखिया एंड डिब्रूगढ़ इलैक्ट्रिसिटी सप्लाई अंडरटेकिंग्स (एक्विजीशन) आर्डिनेंस, 1972] जारी किए गए जिनके अधीन उपक्रमों को अर्जित कर लिया गया। तत्पश्चात् इन दोनों अध्यादेशों के स्थान पर तत्स्थानी दो अधिनियम पारित किए गए अर्थात् 1973 का असम अधिनियम 9 और 1973 का असम अधिनियम 10, प्रस्तुत रिट याचिकाओं में भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 का अवलंब लेते हुए तिनसुखिया इलैक्ट्रिक सप्लाई कंपनी लिमिटेड और डिब्रूगढ़ इलैक्ट्रिक सप्लाई कंपनी लिमिटेड ने भारतीय विद्युत (असम संशोधन) अधिनियम, 1973 [इंडियन इलैक्ट्रिसिटी (असम अमेंडमेंट) ऐक्ट, 1973] और तिनसुखिया और डिब्रूगढ़ विद्युत प्रदाय उपक्रम (अर्जन) अधिनियम, 1973 [तिनसुखिया एंड डिब्रूगढ़ इलैक्ट्रिसिटी सप्लाई अंडरटेकिंग (एक्विजीशन) ऐक्ट, 1973] की सांविधानिक वैधता पर आक्षेप किया है।

सुनवाई के समय जो दलीलें दी गईं और रिट याचिकाओं में जो प्रश्न विचारार्थ आए वे इस प्रकार निश्चित किए गए— (क) कि 1973 के असम अधिनियम 10 की धारा 23 में की गई घोषणा अविधिमान्य है क्योंकि आक्षेपित अधिनियम का संविधान के अनुच्छेद 39 (ख) के सिद्धांतों के साथ कोई युक्तियुक्त और सीधा संबंध नहीं है और वह केवल ऐसा आवरण है जो विधि को इसलिए ओढ़ाया गया है कि उपक्रमों के आशयित कानूनी विक्रय से उद्भूत होने वाली विधिसम्मत बाध्यताओं को नष्ट कर दिया जाए और तदनुसार अनुच्छेद 31-ग लागू नहीं होता।

किसी कानून का प्रत्येक उपबंध अनुच्छेद 31-ग के संरक्षण का हकदार नहीं है बल्कि केवल वही उपबंध संरक्षण के हकदार हैं जो अनुच्छेद 39 (ख) के सिद्धांत को प्रभावशील करने के लिए बुनियादी तौर पर और अनिवार्य रूप से आवश्यक हैं और यह कि तदनुसार रकम के अवधारण से संबंधित आक्षेपित विधि के उपबंधों को अनुच्छेद 31-ग लागू नहीं होता।

(ख) यह कि वस्तुत: और सारत: विधि विद्युत उपक्रमों के अर्जन के लिए नहीं है बल्कि वह तो केवल 'वाद-वस्तु' के अर्जन के लिए है और उपक्रमों के उस 'बाजार कीमत' के, जिसका राज्य आशयित कानूनी क्रय के अधीन संदाय करने के लिए बाध्य था और उस 'बही मूल्य' के, जिसके लिए आक्षेपित विधानों के अधीन दायित्व को सीमित करने का प्रयास किया गया है, बीच अंतर के लिए तिनसुखिया कंपनी के वैध अधिकारों को निर्वापित करने के लिए है।

(ग) यह कि यदि विधानों के लिए अनुच्छेद 31-ग के अधीन उन्मुक्ति उपलभ्य नहीं है तो अर्जन अधिनियम के उपबंधों के अनुसार संदेय 'रकम' पूर्णत: 'आभासी' है और 'दमड़ी के लिए चमड़ी' लेने का प्रयास है।'

और तदनुसार विधि संविधान के अनुच्छेद 31 (2) के (जैसे कि वह उस समय था) अधिकारातीत है और उसका अतिक्रमण करती है। अर्जित आस्तियों के 'बाजार-मूल्य' का विचार किए बिना उनके 'बही-मूल्य' के संदाय से 'रकम' अयथार्थ और आभासी बन जाती है।

1989(4) eILR(PAT) SC 36

(घ) यह कि 'सेवा लाइनों' का, जो अनुज्ञप्तिधारी के आस्तियों के भाग हैं, मूल्यांकन से अपवर्जन कर देने से विधि असवैधानिक और अधिकारातीत बन जाती है।

(ङ) यह कि 'रकम' में से 'आरक्षितियों' को कटौती के लिए, 'स्थिर आस्तियों' के रूप में उसके ग्रहण कर लिए जाने के अतिरिक्त धारा 9(1) का उपबंध और अनुज्ञप्ति की अनवसित कालावधि के मूल्यांकन का लोप अयुक्तियुक्त और मनमाना है।

(च) यह कि निहित होने की तारीख के पश्चात् सरकार द्वारा छंटनी किए गए कर्मचारियों को संदाय करने के लिए धारा 11 (3) के अधीन याची-अनुज्ञप्तिधारी का निरंतर दायित्व और अर्जन के लिए संदेय 'रकम' में से ऐसी राशियों की कटौती के लिए उपबंध मनमाना और अयुक्तियुक्त है।

(छ) यह कि यद्यपि धारा 7(5) के अधीन अनुज्ञप्तिधारी के सभी दायित्व, उन दायित्वों से भिन्न जो विनिर्दिष्टतया निर्दिष्ट किए गए हैं और अधिनियम के अधीन सरकार द्वारा अभिव्यक्त रूप से ग्रहण कर लिए गए हैं, अनुज्ञप्तिधारी के निरंतर रहने वाले दायित्व हैं तथापि उनमें से कुछ दायित्वों को, जो धारा 9 के खंड (ग), (घ) और (च) में निर्दिष्ट हैं, जिनके लिए इस प्रकार कटौती की गई राशियों को न्यासतः धारण करने के लिए संबद्ध लेनदारों के फायदे के लिए सरकार की ओर से कोई तत्समान अभिव्यक्त बाध्यता के बिना तथा उस निमित्त याची के लिए कानूनी उन्मोचन के बिना 'रकम' में से कटौती किए जाने योग्य बनाया गया है। यह अनुचित संवृद्धि है।

(ज) यह कि 'अधिनियम' द्वारा ऐसा कोई तंत्र परिकल्पित और उसके अधीन स्थापित नहीं किया गया है जो या तो धारा 9 के खंड (ग), (घ) और (ङ) के अधीन कटौती योग्य रकमों का या धारा 8 के अधीन कटौती योग्य हानियों का न्यायनिर्णयन और अवधारण करे। इससे 'अधिनियम' के उपबंध दुर्दम और अव्यावहारिक घोषित किए जाने के दायी बन जाते हैं।

(झ) यह कि धारा 20 उस धारा के खंड (क) से (घ) में प्रगणित विषयों की ही विवेचन योग्यता को सीमित करती है तथा सरकार और अनुज्ञप्तिधारी के बीच 'अधिनियम' के अधीन उत्पन्न होने वाले अनेक विवादों को उनके तय किए जाने के लिए किसी तंत्र के बिना छोड़ देती है और 'अधिनियम' को भी अव्यावहारिक बना देती है।"

रिट याचिकाएं खारिज करते हुए उच्चतम न्यायालय द्वारा,

अभिनिर्धारित—तिनसुखिया और डिब्रूगढ़ विद्युत प्रदाय उपक्रम (अर्जन) अधिनियम, 1973 (1973 का असम अधिनियम 10) संविधान के अनुच्छेद 39 (ख) में अंतर्विष्ट सिद्धांत को सुनिश्चित करने के लिए अधिनियमित किया गया था और उसे अनुच्छेद 31-ग के अधीन संरक्षण प्राप्त है। (पैरा 78)

जब कभी अनुच्छेद 31-ग के अधीन किसी विधि के लिए किसी उन्मुक्ति का दावा किया जाता है तब न्यायालय को यह परीक्षा करने की शक्ति प्राप्त है कि क्या उस विधि के उपबंध अनुच्छेद 39(ख) और (ग) में परिकल्पित सिद्धांतों के कार्यान्वयन के लिए बुनियादी तौर पर और अनिवार्य रूप से आवश्यक हैं। (पैरा 49)

याची-कंपनियों के उपक्रमों द्वारा उत्पादित और वितरित विद्युत अनुच्छेद 39 (ख) के प्रयोजन के लिए और उसके अर्थ के भीतर 'समुदाय के भौतिक संसाधन' गठित करती है। अतः इस बात का खंडन नहीं किया जा सकता कि याची के उपक्रमों द्वारा उत्पादित और वितरित विद्युत ऊर्जा से 'समुदाय के भौतिक संसाधन' गठित होते हैं। (पैरा 57 और 60)

यदि ऐसा कोई संबंध केवल दूरस्थ और क्षीण है तो अनुच्छेद 31-ग के अधीन संरक्षण उपलब्ध नहीं होगा। अनुच्छेद 39 (ख) में समुदाय के भौतिक संसाधनों के वितरण की धारणा मात्र इस धारणा तक सीमित नहीं है कि आशयित हिताधिकारियों के बीच वितरण के लिए क्या ग्रहण किया जाता है। वह तो 'वितरण' का एक ढंग है। राष्ट्रीयकरण एक और ढंग है। अपेक्षित विधि की स्कीम की परीक्षा करने पर यह निष्कर्ष निकलना अवश्यंभावी हो जाता है कि विधायी उपाय उपक्रमों के राष्ट्रीयकरण का उपाय है और विधि अनुच्छेद 31-ग का संरक्षण प्राप्त करने के लिए पात्र और हकदार है। (पैरा 61 और 62)

राष्ट्रीयकरण की स्कीम से उन आर्थिक विचारों या घटकों को छोड़ना संभव नहीं है जिनके साथ पूर्ववर्ती जटिल रूप से एकीकृत है। राष्ट्रीयकरण की स्कीम की वित्तीय लागत उसके उर में ही समाहित है और उसे पृथक् नहीं किया जा सकता। राज्य में उपक्रमों के निहित होने से संबंधित और 'रकम' के अनुमान से संबंधित उपबंध अविभाज्य राष्ट्रीयकरण की स्कीम के अभिन्न और अपृथक्करणीय भाग हैं और वे यह अनुमति नहीं देते कि उन पर एक दूसरे से स्वतंत्र सुभिन्न उपबंधों के रूप में विचार किया जाए। (पैरा 64)

(न्यायमूर्ति मुखर्जी के सम्मत निर्णय के अनुसार) जब कभी यह प्रश्न उठाया जाता है कि संसद् या राज्य विधानमंडलों ने अपनी शक्तियों का दुरुपयोग किया है और घोषणा ऐसी विधि में कर दी है जो अनुच्छेद 39 (ख) और (ग) में उल्लिखित निदेशक तत्व सुनिश्चित करने वाली राज्य की नीति को प्रभावी नहीं बनाती है तो निश्चय ही न्यायालय उस आपत्ति पर विचार कर सकता है। ऐसी परीक्षा करने पर यदि यह प्रतीत हो कि उस विधान और अनुच्छेद 39 (ख) और (ग) में वर्णित उद्देश्यों और सिद्धांतों के बीच ऐसा कोई संबंध नहीं है तो उस विधान को अनुच्छेद 31-ग के संरक्षण का लाभ नहीं मिलेगा। यदि विधि दिखाने के लिए राज्य की नीति को प्रभावी बनाने के लिए पारित की गई हो किंतु मर्म एवं सार की दृष्टि से इसका वास्तविक उद्देश्य कोई अनधिकृत लक्ष्य की पूर्ति हो तो न्यायालय घोषणा रूपी परदे को हटा कर विधि की वास्तविक प्रकृति की जांच कर सकता है। घोषणा का उपयोग ऐसी विधि का संरक्षण करने के लिए अर्गल के रूप में नहीं किया जा सकता जिसका अनुच्छेद 39 के दोनों खंडों में वर्णित उद्देश्यों से कोई संबंध नहीं है। अतः आभासी विधान का सिद्धांत लागू होता है। (पैरा 3, 5 और 9)

विद्युत प्रदाय करने वाली याची कंपनियों द्वारा उत्पादित विद्युत शक्ति अनुच्छेद 39 (ख) के प्रविषय और अर्थ के भीतर समुदाय के भौतिक संसाधन हैं और विधानों का समूचे तौर पर अध्ययन करके विधानों की सही प्रकृति और प्रयोजन को ध्यान में रखते हुए कहा जा सकता है कि विधानों के उद्देश्य का भौतिक संसाधनों को इस प्रकार वितरित करने से, जिससे सामूहिक हित का साधन हो, सीधा और युक्तियुक्त संबंध है। अतः आक्षेपित विधान इस अर्थ में आभासी विधान नहीं है कि उसका संविधान के अनुच्छेद 39 (ख) और (ग) के साथ सीधा और युक्तियुक्त संबंध नहीं है। (पैरा 11 और 12)

1989(4) eILR(PAT) SC 36

भारतीय विद्युत अधिनियम, 1910 के उपबंधों में किया गया संशोधन, जिसके द्वारा अनुज्ञप्ति के निबंधनों के अनुसार विकल्प के प्रयोग के अनुसरण में कानूनी क्रय की दशा में संदेय रकम के अनुमान के लिए आधार का संशोधन किया गया था, कानूनी विक्रयों के मामलों को लागू होगा और शासित करेगा और इस मामले में वह महत्वहीन नहीं हो जाएगा क्योंकि 1973 का असम अधिनियम 10 स्वयं ही विधिमान्य विधान है। (पैरा 78)

क्या स्वयं राष्ट्रीयकरण के बारे में यह समझा जाए कि वह लोक प्रयोजन को पूरा करने वाला है या यह कि क्या राष्ट्रीयकरण के बारे में यह दर्शित किया जाए कि वह ऐसे राष्ट्रीयकरण के स्वीकृत उद्देश्यों को वास्तविक रूप से प्रभावी करने के लिए न्यायोचित है—फलमूलक और सिद्धांतवादी दृष्टिकोणों के बीच चयन—अब समाप्त हो चुका है और अब उपलभ्य नहीं है। (पैरा 66)

इन दलीलों का कि विकल्प के प्रयोग करने के तुरंत पश्चात्, स्वयमेव ही, पक्षकारों के बीच संबंध देनदार और लेनदार के बीच जैसे संबंध में परिवर्तित नहीं हो जाता और यह कि उपक्रम में अनुज्ञप्तिधारी का हित 'अनुयोज्य अधिकार' या 'वाद-वस्तु बन जाता है और यह कि किसी लोक प्रयोजन के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि उसकी पूर्ति 'वाद-वस्तु' के अर्जन से हो जाएगी, इस मामले में कोई सरोकार नहीं है। उपक्रम में अनुज्ञप्तिधारी के अधिकार, हक और हित, क्रय करने के विकल्प के प्रयोग मात्र पर तुरंत, यथास्थिति, बोर्ड या राज्य में अंतरित नहीं हो जाते। विकल्प के प्रयोग करने से अनुज्ञप्तिधारी के अपने कारबार को चलाने के अधिकार पर तब तक कोई ऐसा प्रभाव नहीं पड़ेगा जब तक उपक्रम को वस्तुतः ग्रहण नहीं कर लिया जाता या उसके लिए संदाय नहीं कर दिया जाता। (पैरा 70, 71 और 72)

यह आवश्यक नहीं है कि इस प्रश्न पर विचार किया जाए कि क्या 'वाद-वस्तु' का अर्जन किया भी जा सकता है या नहीं। मदन मोहन पाठक **बनाम** भारत संघ और अन्य में इस न्यायालय के कतिपय संप्रेक्षणों से यह संकेत मिलता है कि 'वाद-वस्तु' को भी अर्जित किया जा सकता है। भारतीय विधि में 'वाद-वस्तु' की विधिक संकल्पना और आंग्ल विधि के सिद्धांतों से इसकी सुभिन्नता पर विचार करने की भी आवश्यकता नहीं है। (पैरा 73)

(न्यायमूर्ति मुखर्जी के सम्मत निर्णय के अनुसार) अधिनियम के अधीन अर्जित उपक्रमों के मूल्य का अवधारण और बाजार मूल्य के स्थान पर बही-मूल्य का प्रतिस्थापन, ऐसे अर्जन के लिए मात्र ढंग हैं और उनसे विधान की सही प्रकृति और स्वरूप का पता नहीं चलता किंतु वे उसके आनुषंगिक उपबंध हैं। अतः ऐसा कहना गलत होगा कि जो कुछ अर्जित किया गया था वे भौतिक संसाधन नहीं थे बल्कि वाद-वस्तु थी। प्रश्नगत विधानों की सही प्रकृति और स्वरूप भौतिक संसाधनों अर्थात् विद्युत ऊर्जा को, बेहतर प्रदाय और वितरण के लिए, अर्जित करना था। (पैरा 11)

जब अनुच्छेद 31-ग लागू होता है तब रकम की अभिकथित भ्रामक प्रकृति के संबंध में दलील का कोई अस्तित्व ही नहीं रह जाता है। किसी ऐसी विधि के अधीन, जिसे अनुच्छेद 31-क या 31-ग का संरक्षण प्राप्त है, प्रतिकर की पर्याप्तता या न्यायसंगतता या औचित्य न्यायालय के विचारयोग्य नहीं होगी। अनुच्छेद 31-ग का प्रयोजन अनुच्छेद 31 को, जैसा कि वह उस समय था, अपवर्जित करना है। (पैरा 80, 94 और 95)

यदि आक्षेपित विधि को अनुच्छेद 31-ग का संरक्षण प्राप्त नहीं है, तो भी रकम की पर्याप्तता या अपर्याप्तता न्यायालय के विचार योग्य नहीं है। 'बही मूल्य' की संकल्पना मूल्य की स्वीकृत लेखक-कर्म संकल्पना है। इसे भ्रामक अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता। तदनुसार यदि आक्षेपित विधि को अनुच्छेद 31-ग का संरक्षण प्राप्त नहीं है और समुचित और उपलभ्य परीक्षण लागू भी किए गए हैं तो भी इस मामले की परिस्थितियों में यह नहीं कहा जा सकता कि आक्षेपित विधि में परिकल्पित सिद्धांत ऐसी 'रकम' की ओर ले जाते हैं जिसे अवास्तविक या भ्रामक कहा जा सकता है। (पैरा 96, 98 और 100)

विधि के अधीन जब विद्युत ऊर्जा के लिए आशयित उपभोक्ता द्वारा कोई अध्यपेक्षा की जाती है तब अनुज्ञप्तिधारी की यह बाध्यता होती है कि वह सेवा लाइनें बिछाए। किंतु उपबंधों के अनुसार सेवा लाइनों का समस्त खर्च अनुज्ञप्तिधारी द्वारा वहन किया जाना अपेक्षित नहीं होता। अनुज्ञप्तिधारी विद्युत प्रदाय अधिनियम की अनुसूची के उपबंधों के अनुसार उपभोक्ता से यह अपेक्षा करने के लिए हकदार होता है कि वह सेवा लाइनों के खर्च के कुछ भाग का संदाय करे। मूल्यांकन से सेवा लाइनों के अपवर्जन से 'रकम' के अवधारण के लिए सिद्धांत मनमाना, अयुक्तियुक्त, अन्यायोचित और अधिकारातीत नहीं बन जाता यद्यपि सेवा लाइनें भारतीय विद्युत अधिनियम की धारा 2 (ढ) में 'संकर्म' की परिभाषा के अंतर्गत आती हैं। (पैरा 103 और 104)

'अवशिष्ट रकमें' और 'जहां तक ऐसी रकमें संदत्त न कर दी गई हों' अभिव्यक्तियां इन 'आरक्षितियों' के लिए अनुज्ञप्तिधारी की लेखादेयता की ऐसी किसी द्विरावृत्ति को आवश्यकतः अपवर्जित कर देती हैं। यदि आरक्षितियों का कोई भाग 'स्थिर आस्तियों' में विनिहित किया जाता है और ऐसी 'स्थिर आस्तियों' के रूप में आरक्षितियां अर्जन के अनुसरण में सरकार द्वारा ग्रहण कर ली जाती हैं तो अनुज्ञप्तिधारी द्वारा जिस बात का लेखा-जोखा देना रह जाता है वह केवल संबद्ध लेखाओं में अवशिष्ट रकमें ही होती हैं। 'रकम' में से 'आरक्षितियों' की कटौती के लिए अनुज्ञप्तिधारी का दायित्व केवल तभी उद्भूत होगा यदि उन लेखाओं में अवशिष्ट शेष रकम का संदाय न किया गया हो। (पैरा 107)

यह दलील कि अनुज्ञप्तिधारियों की उस संपत्ति को, जो अनुज्ञप्ति के अपर्यवसित भाग के रूप में है, अर्जन के लिए संदेय रकम की संगणना करते समय हिसाब में नहीं लिया गया है, दी ही नहीं जा सकती, क्योंकि विधि को अनुच्छेद 31-ग का संरक्षण प्राप्त है। (पैरा 108)

धारा 11 (3) में यह उपबंधित है कि यदि, यथास्थिति, बोर्ड या सरकार निहित होने की तारीख से एक वर्ष की कालावधि के भीतर किसी कर्मचारी की छंटनी करती है तो छंटनी किए गए कर्मचारी को संदेय रकमों के लिए दायित्व की 'रकम' से कटौती की जाएगी। चाहे यह प्रश्न न्यायालय के विचार योग्य भी हो तो भी यह उपबंध अयुक्तियुक्त या मनमाना नहीं है क्योंकि यह दायित्व के निरंतर बना रहना परिकल्पित करता है जो अन्यथा सारतः अनुज्ञप्तिधारी का दायित्व था। (पैरा 112)

विधायी आशय स्पष्ट और सुव्यक्त है। यद्यपि निहित होने से पूर्व अनुज्ञप्तिधारियों के कारबार के संचालन में से उद्भूत होने वाले कुछ दायित्व सरकार द्वारा ग्रहण नहीं किए गए

1989(4) eILR(PAT) SC 36

हैं तथापि उनमें से कुछ दायित्व रकम में से कटौती किए जाने के लिए प्राधिकृत किए गए हैं। इस उपबंध का प्रयोजन इतना स्पष्ट है कि उन बाध्यताओं की कोई कानूनी घोषणा अपेक्षित नहीं है जो विधि में उद्भूत होती हैं और सरकार के हाथ आने वाली और उसके द्वारा प्रतिधारित की जाने वाली राशियों से संलग्न हैं। स्पष्टतः यह उपबंध सरकार के हाथों में अनुचित संवृद्धि के लिए आशयित नहीं है। स्पष्टतः प्रयोजन लोक संस्थाओं आदि को देय कुछ प्रकार के ऋणों की वसूली सुकर बनाने के लिए है और कटौती उन लेनदार-संस्थाओं के फायदे के लिए है। स्पष्टतया सरकार इस प्रकार कटौती की गई राशियों का संपृक्त लेनदारों को संदाय करने की विधिक बाध्यता के अधीन होगी। कानून के उपबंधों को विधि के उन साधारण सिद्धांतों के साथ और उनके अनुकूल पढ़ा जाना चाहिए जो सरकार की ओर से ऐसी बाध्यताएं और याचियों के दायित्वों में से ऐसी कटौतियों की सीमा तक उनका विवक्षित तत्समान उन्मोचन द्योतित करते हैं। सरकार के हाथ में यह पारिणामिक कानूनी-न्यास है कि वह इस प्रकार कटौती की गई राशियों का संदाय लेनदारों को करे, चाहे कानून में इस निमित्त अभिव्यक्त उपबंधों के अभाव में विधि के साधारण सिद्धांत क्रियान्वित होते हों। अर्थान्वयन के अनुसार यह अभिधारित किया जाना अपेक्षित है कि ये बाध्यताएं और परिणाम निकलते हैं। (पैरा 114)

इस दृष्टिकोण का समर्थन करना संभव नहीं है कि आक्षेपित विधि में धारा 9 के खंड (ग), (घ) और (ङ) में निर्दिष्ट राशियों के सम्यक् अभिनिश्चयन के लिए कोई तंत्र परिकल्पित नहीं है, जिनमें यह अपेक्षित है कि ऐसे अभिनिश्चयन और अनुमान पर कुल रकम से कटौतियां की जानी चाहिए। सरकार द्वारा ऐसी रकमों का, जो उसके अनुसार कुल रकम में से कटौती किए जाने योग्य हैं, ऐसा अवधारण कर लेने के पश्चात् भी ऐसा अवधारण अंतिम नहीं होगा। अनुज्ञप्तिधारी को संदेय शुद्ध रकम का निर्धारण 'विशेष अधिकारी' द्वारा किया जाना होगा। यह अर्थान्वयन करना युक्तियुक्त होगा कि धारा 8 और 9 के अधीन सरकार द्वारा किया गया विनिश्चय, अनुज्ञप्तिधारी को सुने जाने का अवसर दिए जाने के पश्चात् भी अंतिम नहीं होगा बल्कि अंतिम अवधारण अधिनियम की धारा 10 के अधीन नियुक्त 'विशेष अधिकारी' द्वारा किया जाना होगा। अधिनियम की धारा 10 (1) और (2) का अर्थान्वयन इस प्रकार किया जाना चाहिए जिससे कि 'विशेष अधिकारी' इस बात के लिए समर्थ हो सके कि वह सरकार द्वारा अधिनियम की धारा 9 और 10 के अधीन की गई कटौतियों के संबंध में अवधारणों को हिसाब में ले सके और उस विषय पर अपना विनिश्चय कर सके। आवश्यक विवक्षा द्वारा शुद्ध रकम का 'निर्धारण' करने की शक्ति में कुल रकम में से कटौतियों के विषय में सरकार द्वारा किए गए अवधारण की विधिमान्यता की परीक्षा करने की शक्ति भी शामिल है। आवश्यक विवक्षा द्वारा संदेय 'शुद्ध रकम' के अवधारण और निर्धारण की शक्ति के अंतर्गत धारा 8 और 9 में परिकल्पित विषय भी आते हैं। यद्यपि धारा 10 की उपधारा (1) में विनिर्दिष्टतया केवल धारा 9 ही निर्दिष्ट की गई है तथापि उपधारा (1) और (2) की भाषा के, जो विशेष अधिकारी को संदेय शुद्ध रकम का 'निर्धारण' करने के लिए समर्थ बनाती है, अनुसार आवश्यक विवक्षा द्वारा यह शक्ति भी है कि धारा 8 के अधीन भी की गई कटौती की विधिमान्यता और शुद्धता का विनिश्चय करे। इस प्रकार अर्थान्वयन करने पर धारा 10 के उपबंध अनुज्ञप्तिधारी को संदेय 'शुद्ध रकम' के निर्धारण के लिए युक्तियुक्त रूप से पर्याप्त तंत्र उपलभ्य हो जाएगा। (पैरा 121 और 122)

'विशेष अधिकारी' के विनिश्चय के पश्चात् भी ऐसे विनिर्दिष्ट क्षेत्रों के संबंध में, जिनमें धारा 20 के अधीन विवाद माध्यस्थम् योग्य बन जाते हैं, विवादों के विनिश्चय के लिए अतिरिक्त माध्यस्थम् मंच भी मौजूद है। (पैरा 123)

न्यायालय दृढ़ता से ऐसे अर्थान्वियन का विरोध करते हैं जो किसी कानून को निःसारता की कोटि में ला देता है। किसी कानून के उपबंध का अर्थान्वियन इस प्रकार किया जाना चाहिए जिससे कि वह उसे 'अमान्य से मान्य करना अच्छा है' के सिद्धान्त पर प्रभावी और प्रवर्तनशील बना दे। निःसंदेह यह सही है कि यदि कोई कानून नितांततः अस्पष्ट है और उसकी भाषा पूर्णतया पेचीदा है और नितांततः अर्थहीन है तो वह कानून अस्पष्टता के कारण शून्य घोषित किया जा सकता है। यह अनुच्छेद 14 के अधीन मनमानेपन या अयुक्तियुक्तता के लिए विधि का परीक्षण करने के लिए न्यायिक पुनर्विलोकन में नहीं आता बल्कि किसी कानून की भाषा पर विचार करने वाला अर्थान्वियन न्यायालय कानून का ऐसा अर्थ और प्रयोजन अभिनिश्चित करने के लिए और ऐसा अर्थ देने के लिए करता है जो विधानमंडल आशय देना चाहता था। अतः यह न्यायालय का कर्तव्य है कि वह उस कानून का अर्थ निकाले जो वह यह जानते हुए निकाल सकता है कि कानून प्रवर्तनशील होने के लिए होते हैं न कि असंगत होने के लिए और कोई भी ऐसी असंभव बात नहीं होनी चाहिए जो न्यायालय को यह घोषित करने के लिए इजाजत दे कि कानून अव्यावहारिक है। (पैरा 118 और 120)

अनुसरित निर्णय

		पैरा
[1984]	[1984] 2 उम० नि० प० 372=(1984) 1 एस० सी० सी० 515=ए० आई० आर० 1984 एस० सी० 326 : **तमिलनाडु राज्य और अन्य बनाम एल० अबु कावुर बाई और अन्य;**	11, 45, 61, 82 और 90
[1983]	[1983] 2 उम० नि० प० 777=[1983] 1 एस० सी० आर० 1000 : **संजीव कोक मैन्यूफैक्चरिंग कंपनी बनाम भारत कोकिंग कोल लिमिटेड और एक अन्य**	8, 58 और 88

अवलंबित निर्णय

[1981]	[1981] 3 उम० नि० प० 146=[1981] 1 एस० सी० आर० 206 : **मिनर्वा मिल्स लिमिटेड बनाम भारत संघ;**	7 और 51
[1978]	[1978] 4 उम० नि० प० 324=[1978] 1 एस० सी० आर० 641 : **कर्नाटक राज्य बनाम रंगनाथ रेड्डी;**	87

[1975] [1975] 1 उम० नि० प० 660=[1975] 2 एस० सी० आर० 42 :

गोरधा इलैक्ट्रिक कंपनी लिमिटेड और एक अन्य बनाम गुजरात राज्य और एक अन्य; 70

[1973] [1973] 3 उम० नि० प० 1222=[1974] 1 एस० सी० आर० 671 :

केरल राज्य और एक अन्य बनाम ग्वालियर रेयन सिल्क मैन्यूफैक्चरिंग (वीविंग) कंपनी लिमिटेड; 93

[1973] [1973] 2 उम० नि० प० 159=[1973] सप्लीमेंट एस० सी० आर० 1 :

केश्वानंद भारती बनाम केरल राज्य; 3, 5, 7, 45, 49, 50, 63, 81, 84, 96 और 97

[1969] [1969] 1 उम० नि० प० 185=[1969] 1 एस० सी० आर० 580 :

गुजरात इलैक्ट्रिसिटी बोर्ड बनाम शांतिलाल आर० देसाई; 69

[1963] ए० आई० आर० 1963 एस० सी० 1047 :

अकादसी पधान बनाम उड़ीसा राज्य और अन्य; 66

[1963] (1963) 372 यू० एस० 726 :

फर्ग्यूसन बनाम सक्रूपा; 67

[1962] [1962] सप्लीमेंट 3 एस० सी० आर० 496 :

फाजिलका इलैक्ट्रिक सप्लाई कंपनी बनाम आयकर आयुक्त, दिल्ली; 68

[1882] (1882) 7 एस० सी० 829 :

चार्ल्स रस्सेल बनाम क्वीन 4

अनुमोदित निर्णय

[1972] 13 गुजरात ला रिपोर्टर 88 :

डाकोर-उभरेथ इलैक्ट्रिसिटी कंपनी लिमिटेड बनाम गुजरात राज्य. 104

प्रभेदित निर्णय

[1982] ए० आई० आर० 1982 कलकत्ता 74 :
बिहार स्टेट इलैक्ट्रिसिटी बोर्ड और अन्य बनाम पटना इलैक्ट्रिक सप्लाई कंपनी लिमिटेड; 11 और 76

[1971] [1971] 3 उम० नि० प० 902=[1972] 1 एस० सी० आर० 159 :
कलकत्ता इलैक्ट्रिसिटी सप्लाई कारपोरेशन बनाम धनकर आयुक्त, पश्चिमी बंगाल 101

निर्दिष्ट निर्णय

[1981] [1981] 1 उम० नि० प० 1152=[1980] 3 एस० सी० आर० 331 :
ईश्वरी खेतान शुगर मिल्स (प्राइवेट) लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; 99

[1979] [1979] 1 उम० नि० प० 1252=[1978] 3 एस० सी० आर० 334 :
मदन मोहन पाठक बनाम भारत संघ और अन्य; 73

[1960] (1960) 3 आल इंग्लैंड रिपोर्ट्स 503 :
फासेट प्रापर्टीज बनाम बकिंघम काउंटी कौंसिल; 119

[1926] (1926) ए० सी० 37 :
विटने बनाम इनलैंड रेवेन्यू कमिश्नर; 120

[1904] (1904) 2 चांसरी 352 :
मंचेस्टर शिप कैनल कंपनी बनाम मंचेस्टर रेसकोर्स कंपनी 118

आरंभिक अधिकारिता : 1972 की रिट याचिका संख्या 457 और 458.

संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन रिट याचिकाएं।

याची की ओर से — सर्वश्री सोली जे० सोराबजी और एस० रंगराजन, ज्येष्ठ अधिवक्ता, सर्वश्री हरीश एन० साल्वे, डी० एन० मुखर्जी, रंजन मुखर्जी, उदय के० ललित, एस० के० नंदी और एस० पारेख

प्रत्यर्थियों की ओर से	डा० शंकर घोष और श्री जी० एल० सांघी, ज्येष्ठ अधिवक्ता, सर्वश्री पी० चौधरी, सी० एस० वैद्यनाथन् और सी० वी० सुब्बा राव
मध्यक्षेपी की ओर से	श्रीमती ए० के० वर्मा

न्यायालय का मुख्य निर्णय न्या० एम० एन० वेंकटाचलय्या ने दिया।

(न्या० सव्यसाची मुखर्जी ने अलग से सम्मत निर्णय दिया)

न्या० सव्यसाची मुखर्जी (सम्मत निर्णय)—मैं भ्राता वेंकटाचलय्या से इस बात पर सहमत हूं कि आक्षेपित विधानों को चुनौती देने के समर्थन में याची की ओर से दी गई दलीलें असफल होनी चाहिएं और रिट याचिकाएं खारिज की जानी चाहिएं। लेकिन मैं इस मामले के केवल एक पहलू पर, जो इस मामले तथा 1972 की रिट याचिका सं० 458, 1985 की सिविल अपील सं० 4113 और 1974 की रिट याचिका सं० 5 (एन) में समान है, अर्थात् उस विधान के न्यायिक पुनर्विलोकन की परिधि के संबंध में अपने विचार प्रकट करना चाहूंगा जहां संविधान के अनुच्छेद 31-ग के अधीन विधान में घोषणा की गई है।

2. इन रिट याचिकाओं से हमारा संबंध दो विधानों से है अर्थात् भारतीय विद्युत (असम संशोधन) अधिनियम, 1973 [इंडियन इलैक्ट्रिसिटी (असम अमेंडमेंट) ऐक्ट, 1973] (1973 का असम अधिनियम 9) और तिनसुखिया और डिब्रुगढ़ विद्युत प्रदाय उपक्रम (अर्जन) अधिनियम, 1973 [तिनसुखिया एंड डिब्रुगढ़ इलैक्ट्रिक सप्लाई अंडरटेकिंग्स (एक्विजीशन) ऐक्ट, 1973] (1973 का अधिनियम 10)। इन रिट याचिकाओं में महत्वपूर्ण मुख्य प्रश्न उस विधान के न्यायिक पुनर्विलोकन का विस्तार और परिधि है जहां संविधान के अनुच्छेद 3'-ग के अधीन घोषणा की गई है और जिसमें यह व्यादिष्ट है कि कोई विधि जो अन्य अनुच्छेदों के साथ-साथ, अनुच्छेद 38, 39, 39-क, 40, 41, 42 43-क, 44 से 48, 48-क और 49 से 51 में अधिकथित सभी या किन्हीं तत्वों को सुनिश्चित करने के लिए राज्य की नीति को प्रभावी करने वाली हो, इस आधार पर शून्य नहीं समझी जाएगी कि वह अनुच्छेद 14 या 19 द्वारा प्रदत्त अधिकारों में से किसी से असंगत है या उसे छीनते हैं या न्यून करती है और इसके अतिरिक्त यह उपबंधित है कि कोई विधि, जिसमें यह घोषणा हो कि वह ऐसी नीति को प्रभावी करने के लिए है, किसी न्यायालय में इस अभिवाक् पर प्रश्नगत नहीं की जाएगी कि वह ऐसी नीति को प्रभावी नहीं करती है। प्रश्नगत दोनों विधान संविधान के अनुच्छेद 31-ग के अधीन घोषणा के अंतर्गत आते हैं।

3. विचारार्थ जो मुख्य प्रश्न है वह यह है कि क्या घोषणा न्यायालय के विचार योग्य है और क्या उसका न्यायिक पुनर्विलोकन किया जा सकता है और उस न्यायिक पुनर्विलोकन का विस्तार क्या है। संविधान के अनुच्छेद 39(ख) में यह व्यादिष्ट है कि राज्य अपनी नीति का, विशिष्टतया, इस प्रकार संचालन करेगा कि सुनिश्चित रूप से समुदाय के भौतिक संसाधनों का स्वामित्व और नियंत्रण इस प्रकार बंटा हो जिससे सामूहिक हित का सर्वोत्तम रूप से साधन हो और आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार चले जिससे धन और उत्पादन-साधनों का सर्वसाधारण के लिए अहितकारी संकेंद्रण न हो। इस संबंध में **केशवानंद भारती** बनाम **केरल राज्य**[1] में न्यायमूर्ति रे, जैसे कि विद्वान् मुख्य न्यायमूर्ति उस समय थे, के संप्रेक्षण देखिए। अत:

[1] [1973] 2 उम० नि० प० 159, 583=[1973] सप्लीमेंट एस० सी० आर० 1, 451-452.

1989(4) eILR(PAT) SC 36

यह तय करने के लिए कि क्या कोई कानून अनुच्छेद 31-ग के अंतर्गत आता है या नहीं, न्यायालय, यदि आवश्यक हो तो विधान की प्रकृति और स्वरूप तथा उसके विषय की परीक्षा यह देखने के लिए कर सकता है कि अनुच्छेद 39 (ख) और (ग) में वर्णित सिद्धांतों के बीच उस विधि का कोई संबंध है या नहीं। ऐसी परीक्षा करने पर यदि यह प्रतीत हो कि उस विधान और अनुच्छेद 39 (ख) और (ग) में वर्णित उद्देश्यों और सिद्धांतों के बीच ऐसा कोई संबंध नहीं है तो उस विधान को अनुच्छेद 31-ग के संरक्षण का लाभ नहीं मिलेगा। उस कानून की वास्तविक प्रकृति जानने के लिए, यदि आवश्यक हो, तो न्यायालय उसकी परीक्षा भी कर सकता है।

4. उसी निर्णय में न्यायमूर्ति जगनमोहन रेड्डी ने रिपोर्ट के पृष्ठ 530[1] पर यह बात दोहराई कि ऐसी विधि को जिसे अनुच्छेद 31-ग लागू नहीं होता है, किन्हीं ऐसी अन्य विधियों के साथ जो अनुच्छेद 31-ग के भीतर वस्तुतः आती हैं, और उन विधियों के साथ जो उस अनुच्छेद के भीतर नहीं आती हैं, सम्मिलित करने मात्र से किसी घोषणा द्वारा संरक्षा प्रदान नहीं की जा सकती। अतः ऐसे मामले में न्यायालय इस बात के लिए सदैव सक्षम होगा कि वह विशिष्ट मामले में विधान की वास्तविक प्रकृति और स्वरूप तथा उसके उद्देश्य और उसमें चर्चित मुख्य बातों की उसके लक्ष्य और उसके विस्तार की परीक्षा करे। इस संबंध में **चार्ल्स रस्सेल** बनाम **क्वीन**[2] में प्रिवी कौंसिल के संप्रेक्षणों का अवलंब लिया गया था। उसी निर्णय में **पृष्ठ 631**[3] पर न्यायमूर्ति पालेकर ने भी यह बात दोहराई थी कि यदि न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि विधान का उद्देश्य एक बहाना मात्र था और असली उद्देश्य विभेद या अनुच्छेद 39 (ख) और (ग) में विनिर्दिष्ट उद्देश्य से अन्यथा कोई उद्देश्य था, तो अनुच्छेद 31-ग लागू नहीं होगा और अनुच्छेद 31-ग के बिना कानून की विधिमान्यता की जांच की जाएगी।

5. जब कभी यह प्रश्न उठाया जाता है कि संसद् या राज्य विधानमंडलों ने अपनी शक्तियों का दुरुपयोग किया है और घोषणा ऐसी विधि में कर दी है जो अनुच्छेद 39 (ख) और (ग) में उल्लिखित निदेशक तत्व सुनिश्चित करने वाली राज्य की नीति को प्रभावी नहीं बनाती है तो निश्चय ही न्यायालय उस आपत्ति पर विचार कर सकता है और विचार करना चाहिए तथा विवाद निपटा सकता है और निपटाना चाहिए। **केशवानंद भारती के मामले**[4] में रिपोर्ट के पृष्ठ 855[5] पर न्यायमूर्ति मैथ्यू के संप्रेक्षण देखिए। यदि न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि घोषणा एक बहाना मात्र है और यह कि विधि का वास्तविक उद्देश्य अनुच्छेद 39 (ख) और (ग) द्वारा व्यादिष्ट निदेशक तत्व सुनिश्चित करने के लिए राज्य की नीति प्रभावी बनाने से भिन्न कुछ और है तो घोषणा न्यायालय को उस विधि के ऐसे किसी भी उपबंध को, जो अनुच्छेद 14, 19 या 31 का अतिक्रमण करता हो, अवैध घोषित करने से विवर्जित न कर सकेगी। दूसरे शब्दों में, यदि विधि दिखाने के लिए राज्य की नीति को प्रभावी बनाने के लिए पारित की गई हो किंतु मर्म एवं सार की दृष्टि से इसका वास्तविक

[1] [1973] 2 उम० नि० प० 672.

[2] (1882) 7 एस० सी० 829, 838-840.

[3] [1973] 2 उम० नि० प० 779.

[4] [1973] 2 उम० नि० प० 159=[1973] सप्लीमेंट एस० सी० आर० 1.

[5] [1973] 2 उम० नि० प० 1020.

उद्देश्य कोई अनधिकृत लक्ष्य की पूर्ति हो तो न्यायालय घोषणा रूपी परदे को हटा कर विधि की वास्तविक प्रकृति की जांच कर सकता है। रिपोर्ट के पृष्ठ 851 और 856[1] भी देखिए। न्यायमूर्ति बेग, जैसे कि विद्वान् मुख्य न्यायमूर्ति उस समय थे, रिपोर्ट के पृष्ठ 884-885[2] पर इस बात को दोहराया कि ऐसा कृत्रिम विधान जिसका कि उद्देश्य बिल्कुल ही भिन्न हो, किंतु जिस पर विनिर्दिष्ट सिद्धांतों को प्रभावी बनाने के लिए आशयित विधि के रूप में मात्र आवरण चढ़ा हुआ हो, प्रथम भाग द्वारा अधिकथित कसौटी पर खरा नहीं उतरेगा और स्वयं घोषणा के परिणामस्वरूप यह बात कि न्यायालय विधि की उस संबद्धता की परीक्षा कर सकेंगे, प्रवारित नहीं हो जाती तथा न्यायालय यह अवधारित कर सकेंगे कि क्या पारित की गई विधि वस्तुत: ऐसी विधि है जिसके अंतर्गत अनुच्छेद 31-ग द्वारा सृष्ट क्षेत्र आ जाता है या यह कि वह ऐसी घोषणा के आवरण के अधीन बनी रह कर इस प्रकार संरक्षित होने का बहाना मात्र है। रिपोर्ट के पृष्ठ 934[3] पर न्यायमूर्ति द्विवेदी ने यह कहा है कि न्यायालय को अब भी इस बात का अवधारण करने की शक्ति है कि क्या विधि समुदाय के भौतिक संसाधनों के स्वामित्व और नियंत्रण से और आर्थिक व्यवस्था से सुसंगत है। यदि न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि विधि सुसंगत नहीं है तो न्यायालय ऐसी विधि को शून्य घोषित कर सकता है। घोषणा का उपयोग ऐसी विधि का संरक्षण करने के लिए अर्गल के रूप में नहीं किया जा सकता जिसका अनुच्छेद 39 के दोनों खंडों में वर्णित उद्देश्यों से कोई संबंध नहीं है।

6. सादर, मैं न्यायमूर्ति चंद्रचूड़ के, जैसे कि विद्वान् मुख्य न्यायमूर्ति उस समय थे, उक्त रिपोर्ट के पृष्ठ 996[4] पर संप्रेक्षण से सहमत हूं कि अनुच्छेद 31-ग के अधीन घोषणा के अंतर्गत यह बात अवधारित करने संबंधी न्यायालय की अधिकारिता नहीं आती है कि क्या वह विधि अनुच्छेद 39 (ख) और (ग) में विनिर्दिष्ट सिद्धांतों को सुनिश्चित करने की दृष्टि से राज्य की नीति को प्रभावी बनाने के लिए है।

7. **मिनर्वा मिल्स लिमिटेड** बनाम **भारत संघ**[5] में मुख्य न्यायमूर्ति चन्द्रचूड़ ने यह संप्रेक्षित किया कि अनुच्छेद 31-ग का स्पष्ट अर्थान्वयन यह है कि इस प्रश्न की जांच करने की शक्ति कि क्या किसी विधि के उपबंधों के बीच तथा किसी निदेशक तत्व के बीच युक्तियुक्त संबंध है, न्यायालयों को यह शक्ति प्रदान नहीं कर सकती कि वे स्वयं राज्य संबंधी नीति के बारे में निर्णय दें। उच्चतम स्तर पर न्यायालय अनुच्छेद 31-ग के अधीन, इस बारे में अपना समाधान कर सकते हैं कि विधि की अनन्यता इन अर्थों में क्या है और क्या यह किसी निदेशक तत्व के साथ प्रत्यक्ष तथा युक्तियुक्त संबंध अधिरोपित करती है। यदि न्यायालय का समाधान हो जाता है कि ऐसा संबंध विद्यमान है तो अपरिहार्य परिणाम निश्चित रूप से निकलेगा जिसके लिए अनुच्छेद 31-ग द्वारा उपबंध किया गया है। न्यायमूर्ति ने यह अभिलिखित किया कि **केशवानंद भारती के मामले**[6] में सभी तेरह न्यायमूर्तियों ने सहमति व्यक्त की थी।

[1] [1973] 2 उम० नि० प० 1015 और 1020-21.

[2] [1973] 2 उम० नि० प० 1050-51.

[3] [1973] 2 उम० नि० प० 1104.

[4] [1973] 2 उम० नि० प० 1172.

[5] [1981] 3 उम० नि० प० 146, 196=[1981] 1 एस० सी० आर० 206, 261.

[6] [1973] 2 उम० नि० प० 159=[1973] सप्लीमेंट एस० सी० आर० 1.

अनुच्छेद 31-ग के अधीन न्यायिक पुनर्विलोकन के लिए जिस एकमात्र प्रश्न पर विचार करने की स्वतंत्रता है वह यह है कि क्या आक्षेपकृत विधि तथा अनुच्छेद 39(ख) और (ग) के उपबंधों के बीच सीधा तथा युक्तियुक्त संबंध विद्यमान है। यह स्पष्ट है कि युक्तियुक्तता संबंध के बारे में है न कि विधि के बारे में।

8. न्यायमूर्ति भगवती ने, जैसे कि विद्वान् मुख्य न्यायमूर्ति उस समय थे, रिपोर्ट के पृष्ठ 337-338[1] पर इस बात को दोहराया कि यदि न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि हालांकि विधि को दिखावटी रूप से निदेशक तत्व को प्रभावशाली बनाने के लिए पारित कर दिया गया है, वह तत्व और सार की दृष्टि से ऐसी विधि है जो किसी अप्राधिकृत प्रयोजन को पूरा करती है और वह इन अर्थों में अप्राधिकृत नहीं है कि वह किसी निदेशक तत्व के अंतर्गत नहीं आती है और ऐसी विधि को संशोधित अनुच्छेद 31-ग की सुरक्षा प्राप्त नहीं होगी जो ऐसी विधि को सुरक्षा प्रदान नहीं करती जिसका कि किसी निदेशक तत्व के साथ मात्र कोई दूरस्थ या क्षीण संबंध हो। आवश्यक यह है कि वास्तविक तथा सारवान् संबंध होना चाहिए और यह निश्चित है कि विधि का अधिष्ठायी उद्देश्य यह होना चाहिए कि यह निदेशक तत्व को प्रभावशील बनाए। **संजीव कोक मैन्यूफैक्चरिंग कंपनी बनाम भारत कोकिंग कोल लिमिटेड और एक अन्य**[2] में इस न्यायालय के संप्रेक्षण भी देखिए।

9. इस दृष्टिकोण से देखने पर यह नहीं कहा जा सकता कि आभासी विधान के सिद्धांत लागू नहीं होंगे। यदि यह प्रदर्शित कर दिया गया था कि इन दोनों आक्षेपित विधियों और संविधान के अनुच्छेद 31 (ख) और (ग) के अधीन प्रतिष्ठापित सिद्धांतों के बीच कोई सीधा और युक्तियुक्त संबंध नहीं था तो वे आभासी विधान होते और उस कारण बुरे होते।

10. याची की ओर से श्री सोराबजी और श्री रंगराजन द्वारा यह दलील दी गई थी कि बातचीत द्वारा याची की संपत्ति के अर्जन के लिए प्रतिकर का संदाय करने की उपेक्षा करने के लिए आक्षेपित अधिनियमों की युक्ति परिकल्पित की गई थी। अतः उस संदर्भ में बाजार मूल्य के स्थान पर बही-मूल्य का प्रतिस्थापन संपत्ति से वंचित करना था और यह भ्रामक है तथा प्रतिकर के बिना संपत्ति के छीन लेने के समान होगा।

11. मैं इससे सहमत नहीं हूं और न ही हो सकता हूं। यह निर्विवाद है कि विद्युत प्रदाय करने वाली याची कंपनियों द्वारा उत्पादित विद्युत शक्ति अनुच्छेद 39(ख) के प्रविषय और अर्थ के भीतर समुदाय के भौतिक संसाधन हैं और विधानों का समूचे तौर पर अध्ययन करके विधानों की सही प्रकृति और प्रयोजन को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि विधानों के उद्देश्य का भौतिक संसाधनों को इस प्रकार वितरित करने से, जिससे सामूहिक हित का साधन हो, सीधा और युक्तियुक्त संबंध है। उसके मूल्य का अवधारण और बाजार मूल्य के स्थान पर बही मूल्य का प्रतिस्थापन, ऐसे अर्जन के लिए मात्र ढंग हैं और उनसे विधान की सही प्रकृति और स्वरूप का पता नहीं चलता किंतु वे उसके आनुषंगिक उपबंध हैं। यदि स्थिति ऐसी है तो ऐसा कहना गलत होगा कि जो कुछ अर्जित किया गया था, वे

[1] [1981] 3 उम० नि० प० 146, 305-306.
[2] [1983] 2 उम० नि० प० 777, 798=[1983] 1 एस० सी० आर० 1000, 1020.

भौतिक संसाधन नहीं थे बल्कि वाद-वस्तु थी। प्रश्नगत विधानों की सही प्रकृति और स्वरूप भौतिक संसाधनों अर्थात् विद्युत ऊर्जा को, बेहतर प्रदाय और वितरण के लिए, अर्जित करना था। मामले के उस दृष्टिकोण से **बिहार स्टेट इलैक्ट्रिसिटी बोर्ड और अन्य** बनाम **पटना इलैक्ट्रिक सप्लाई कंपनी लिमिटेड**[1] में कलकत्ता उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के विनिश्चय के सिद्धांतों के इस मामले को लागू होने की कोई गुंजाइश नहीं है। **तमिलनाडु राज्य और अन्य** बनाम **एल० अबु कावुर बाई और अन्य**[2] में इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ ने यह मत व्यक्त किया है कि अनुच्छेद 39 (ख) और (ग) को प्रभावशील करने वाला अधिनियम को संरक्षण प्राप्त है यदि युक्तियुक्त संबंध सिद्ध कर दिया जाता है।

12. मामले के उस दृष्टिकोण से, विधानों की सही प्रकृति और स्वरूप को ध्यान में रखते हुए मैं इस बात से सहमत हूं कि आक्षेपित विधान इस अर्थ में आभासी विधान नहीं है कि संविधान के अनुच्छेद 39 (ख) और (ग) के साथ सीधा और युक्तियुक्त संबंध नहीं था।

13. मामले के अन्य पहलुओं से, मैं न्यायमूर्ति वेंकटचलय्या के निर्णय से निकाले गए निष्कर्ष से सादर सहमत हूं।

मुख्य न्यायमूर्ति आर०एस० पाठक, न्यायमूर्ति एस० नटराजन और एस० रंगनाथन की ओर से निर्णय न्यायमूर्ति एम० एन० वेंकटाचलय्या ने दिया।

14. **न्यायमूर्ति वेंकटाचलय्या**—इन दो रिट याचिकाओं में भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 का अवलंब लेते हुए तिनसुखिया इलैक्ट्रिक सप्लाई कंपनी लिमिटेड और डिब्रुगढ़ इलैक्ट्रिक सप्लाई कंपनी लिमिटेड ने, जो भारतीय विद्युत अधिनियम, 1910 के अधीन असम राज्य में क्रमशः तिनसुखिया और डिब्रुगढ़ नगरों के नगरपालिक बोर्डों के क्षेत्रों के भीतर विद्युत का प्रदाय करने के लिए अनुज्ञप्तिधारी हैं तथा दोनों कंपनियों के शेयरधारक प्रबंध निदेशकों ने भारतीय विद्युत (असम संशोधन) अधिनियम, 1973 [इंडियन इलैक्ट्रिसिटी (असम) अमेंडमेंट ऐक्ट, 1973] और तिनसुखिया और डिब्रुगढ़ विद्युत प्रदाय उपक्रम (अर्जन) अधिनियम, 1973 [तिनसुखिया एंड डिब्रुगढ़ इलैक्ट्रिसिटी सप्लाई अंडरटेकिंग (एक्विजीशन) ऐक्ट, 1973] की सांविधानिक वैधता पर आक्षेप किया है। पश्चात्कथित अधिनियमितियों द्वारा दोनों कंपनियों के उपक्रमों को अर्जित करने का प्रयास किया गया था जिससे कि वे 27-9-1972 से सरकार में निहित हो जाएं।

15. याचियों ने याचिकाओं में चौबीसवें और पच्चीसवें संशोधन की विधिमान्यता को भी चुनौती दी है। इन संशोधनों पर इस न्यायालय के पश्चात्वर्ती निर्णयों की दृष्टि से याचिका के इस भाग का अस्तित्व नहीं रहता।

16. याची-कंपनियां भारतीय कंपनी अधिनियम, 1913 के अधीन रजिस्ट्रीकृत लोक लिमिटेड कंपनियां हैं और कंपनी अधिनियम, 1956 के अधीन विद्यमान कंपनियां हैं जिनके रजिस्ट्रीकृत कार्यालय असम में क्रमशः तिनसुखिया और डिब्रुगढ़ में हैं। दोनों

---

[1] ए० आई० आर० 1982 कलकत्ता 74.

[2] [1984] 2 उम० नि० प० 372=(1984) 1 एस० सी० सी० 515 =ए० आई० आर० 1984 एस० सी० 326.

कंपनियों को तिनसुखिया इलैक्ट्रिक सप्लाई कंपनी लिमिटेड और डिब्रुगढ़ इलैक्ट्रिक सप्लाई कंपनी लिमिटेड—जिन्हें इसमें इसके पश्चात् क्रमशः 'तिनसुखिया कंपनी' और 'डिब्रुगढ़ कंपनी' कहा गया है—भारतीय विद्युत अधिनियम, 1910 (संक्षेप में 'अधिनियम, 1910') के उपबंधों के अधीन अनुज्ञप्त क्षेत्रों में अर्थात् तिनसुखिया और डिब्रुगढ़ नगरपालिक बोर्डों के क्षेत्रों में विद्युत प्रदाय के लिए अनुज्ञप्तियां प्रदान की गई थीं। 'डिब्रुगढ़ कंपनी' को 'डिब्रुगढ़ विद्युत अनुज्ञप्ति, 1928' अनुदान में विशिष्टतया वर्णित निबंधनों और शर्तों पर, प्रदान की गई थी जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह सम्मिलित किया गया था कि राज्य को 13-2-1928 से जो अनुज्ञप्ति के प्रारंभ होने की तारीख है, 50 वर्ष के अवसान पर और तत्पश्चात् 20 वर्ष की पश्चात्वर्ती प्रत्येक कालावधि के अवसान पर उपक्रम को क्रय करने का विकल्प होगा।

17. इसी प्रकार 'तिनसुखिया कंपनी' को 'तिनसुखिया विद्युत अनुज्ञप्ति, 1954' प्रदान की गई थी जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ एक शर्त सम्मिलित की गई थी कि असम राज्य 21-7-1954 से, जो अनुज्ञप्ति के प्रारंभ होने की तारीख है, 20 वर्ष के अवसान पर और तत्पश्चात् प्रत्येक पश्चात्वर्ती 10 वर्षीय कालावधि के अवसान पर विद्युत उपक्रम को क्रय करने के विकल्प का प्रयोग कर सकता है।

18. लेकिन दो अध्यादेशों द्वारा अर्थात् भारतीय विद्युत (असम संशोधन) अध्यादेश, 1972 [इंडियन इलैक्ट्रिसिटी (असम अमेंडमेंट) आर्डिनेंस, 1972] (1972 का असम अध्यादेश 7) तथा तिनसुखिया और डिब्रुगढ़ विद्युत प्रदाय उपक्रम (अर्जन) अध्यादेश, 1972 [तिनसुखिया एंड डिब्रुगढ़ इलैक्ट्रिसिटी सप्लाई अंडरटेकिंग्स (एक्विजीशन), आर्डिनेंस, 1972] (1972 का असम अध्यादेश 8), जो संविधान के अनुच्छेद 213 के अधीन विधायी शक्तियों का प्रयोग करते हुए राज्यपाल द्वारा प्रख्यापित किए गए थे, दोनों कंपनियों के विद्युत प्रदाय उपक्रम 27-9-1972 को 23.30 बजे से सरकार द्वारा अर्जित कर लिए गए थे और सरकार में निहित हो गए थे। तदनुसार असम सरकार द्वारा दोनों उपक्रमों का कब्जा और नियंत्रण उस दिन से ग्रहण कर लिया गया था। तत्पश्चात् दोनों अध्यादेश दो तत्समान विधायी अधिनियमितियों अर्थात् भारतीय विद्युत (असम संशोधन) अधिनियम, 1973 [इंडियन इलैक्ट्रिसिटी (असम अमेंडमेंट) ऐक्ट, 1973] (1973 का असम अधिनियम 9) तथा तिनसुखिया और डिब्रुगढ़ विद्युत प्रदाय उपक्रम (अर्जन) अधिनियम, 1973 [तिनसुखिया एंड डिब्रुगढ़ इलैक्ट्रिक सप्लाई अंडरटेकिंग्स (एक्विजीशन) ऐक्ट, 1973] (1973 का असम अधिनियम 10) द्वारा प्रतिस्थापित किए गए थे।

19. रिट याचिकाओं के फाइल किए जाने के समय दोनों अध्यादेश विधायी उपायों द्वारा प्रतिस्थापित नहीं किए गए थे। लेकिन दोनों विधायी अधिनियमितियों के, पूर्ववर्ती अध्यादेशों के प्रख्यापन की तारीख से, भूतलक्षी प्रभाव से प्रवृत्त होने के पश्चात्, याचियों ने याचिकाओं को संशोधित करने के लिए इजाज़त मांगी थी जिससे कि वे अधिनियमितियों के विरुद्ध आक्षेप कर सकें और इस न्यायालय के तारीख 18-12-1973 के आदेश द्वारा इजाज़त दे दी गई थी।

20. अध्यादेशों का प्रख्यापन किस प्रकार हुआ और उक्त उपक्रमों को अर्जित करने के लिए प्रथमतः बातचीत द्वारा और बाद में क्रय के विकल्प द्वारा राज्य सरकार द्वारा पहले

जो कदम उठाए गए थे, उनके वास्तविक पूर्ववृत्त की ओर संक्षेप में ध्यान दिलाना इसलिए आवश्यक है ताकि चुनौती के आधारों को उनके उचित परिप्रेक्ष्य में देखा जा सके।

21. प्रत्यर्थी सं० 4 अर्थात् असम राज्य विद्युत बोर्ड, ऐसा प्रतीत होता है, वर्ष 1964 से प्राइवेट बातचीत द्वारा तिनसुखिया कंपनी के उपक्रम को ग्रहण कर लेने का अपना आशय अभिव्यक्त कर रहा था। इस प्रस्ताव के अनुसरण में और उसे कार्यान्वित करने के लिए बोर्ड ने तिनसुखिया कंपनी के उपक्रम की आस्तियों का मूल्य निर्धारण करने के लिए तीन सदस्यों की एक समिति गठित की थी। इस प्रकार किया गया मूल्यांकन और इस प्रकार तैयार की गई तालिकाओं के आधार पर बोर्ड ने 27 मार्च, 1970 को तिनसुखिया कंपनी को यह सूचित किया था कि बोर्ड ने उपक्रम की आस्तियों का मूल्यांकन 30,54,246 रुपए अनुमोदित किया है और इसमें भूमि का मूल्य अपवर्जित किया गया है। भूमि का मूल्य बाद में 2,40,000 रुपए प्राक्कलित किया गया था। असम राज्य विद्युत बोर्ड के अध्यक्ष ने तारीख 4 मार्च, 1971 के पत्र द्वारा तिनसुखिया कंपनी को सूचित किया था कि कंपनी 33,00,000 रुपए के मूल्यांकन पर बोर्ड को उपक्रम के अंतरण के प्रस्ताव की स्वीकृति तुरंत संज्ञापित और संसूचित करे। ऐसा प्रतीत होता है कि कंपनी ने इस ओर ढील दे दी और प्रस्ताव की तुरंत और अविशेषित अपनी स्वीकृति संज्ञापित और संसूचित नहीं की थी किंतु ऐसा प्रतीत होता है कि उसके मस्तिष्क में कोई प्रतिप्रस्ताव था और अपना मत बोर्ड से मनवा लेने के प्रत्याशय से बोर्ड के अध्यक्ष से निवेदन किया कि वह उपक्रम के मूल्यांकन के विषय में और विचार-विमर्श करने के लिए तिनसुखिया का दौरा करें। तत्पश्चात् जून, 1971 में अध्यक्ष ने बोर्ड के अधिकारियों के साथ तिनसुखिया का दौरा किया और कंपनी के साथ विचार-विमर्श किया। कंपनी का कहना है कि इस विचार-विमर्श के अनुसरण में बोर्ड के कार्यपालक इंजीनियर को अध्यक्ष द्वारा कहा गया था कि वह कंपनी के सहयोग से 31-10-1971 तक की नई तालिका तैयार करे।

22. लेकिन बोर्ड के सचिव ने कंपनी को 10-12-1971 को इस प्रभाव की एक संसूचना भेजी कि चूंकि कंपनी ने तारीख 25-3-1970 के बोर्ड के पत्र में अंतर्विष्ट प्रस्ताव के संबंध में अपनी सहमति प्रकट नहीं की है इसलिए उक्त प्रस्ताव वापस ले लिया गया समझा जाए। तत्पश्चात् बोर्ड ने तारीख 15/23 मई, 1972 की सूचना कंपनी को जारी की जिसमें अनुज्ञप्ति के खंड 12 (iv) के साथ पठित 1910 के अधिनियम की धारा 6(1) के अधीन उपक्रम का 'अनुज्ञप्ति की अवधि' के अवसान पर क्रय करने के अपने विकल्प का प्रयोग करने का आशय व्यक्त किया और तदनुसार कंपनी से यह अपेक्षा की कि 21-9-1974 के, जबकि अनुज्ञप्ति की 20 वर्ष की कालावधि समाप्त हो जाएगी, अवसान पर बोर्ड को उपक्रम का विक्रय कर दे। इस सूचना के अनुसरण में कंपनी ने तारीख 17-8-1972 की अपनी संसूचना भेजी जिसमें उसने अपने इस प्रत्याशय की पुष्टि करने के लिए कहा था कि कानूनी विक्रय के लिए क्रय कीमत 1910 के अधिनियम की धारा 7-क के उपबंधों के अनुसार अवधारित की जाएगी और यह कि ऐसी कीमत भी कंपनी के ग्रहण कर लिए जाने की तारीख को या उससे पूर्व निविदत्त कर दी जाएगी। ऐसा प्रतीत होता है कि क्रय करने की इस सूचना के अनुसरण में आगे कुछ भी नहीं हुआ। किंतु जैसा कि पहले कहा जा चुका है, कंपनी के उपक्रम के अनिवार्य अर्जन के लिए 27-9-1972 को दोनों अध्यादेश प्रख्यापित किए गए थे।

23. जहां तक डिब्रुगढ़ कंपनी का संबंध है, इसी प्रकार की प्राइवेट बातचीत द्वारा क्रय करने के लिए बातचीत आरंभ की गई थी और बोर्ड के वित्त और लेखा सदस्य के साथ बोर्ड के मुख्य इंजीनियर ने उपक्रम् के मूल्यांकन के संबंध में विचार-विमर्श करने के लिए 27-1-1965 को डिब्रुगढ़ का दौरा किया। कुछ वर्षों तक इस संबंध में कोई बात आगे नहीं बढ़ी। लेकिन तारीख 3 अगस्त, 1970 की संसूचना में, जो सचिव, असम सरकार, शक्ति (विद्युत) खान और खनिज विभाग, द्वारा बोर्ड के सचिव को संबोधित की गई थी, इस बात को दोहराया गया था कि सरकार ने यह विनिश्चय किया है कि डिब्रुगढ़ कंपनी के उपक्रम को बातचीत द्वारा ग्रहण कर लिया जाए। अभी इसी प्रकार चल रहा था कि कंपनी के उपक्रम को 27-9-1972 को राज्यपाल द्वारा प्रख्यापित दोनों अध्यादेशों के अनुसरण में ग्रहण कर लिया गया था।

24. संक्षेपतः हम उन दो अधिनियमितियों के उपबंधों पर विचार करेंगे जिनसे अब दोनों अध्यादेश प्रतिस्थापित किए जा चुके हैं :—

भारतीय विद्युत (असम संशोधन) अधिनियम, 1973 [इंडियन इलैक्ट्रिसिटी (असम अमेंडमेंट) ऐक्ट, 1973] द्वारा भारतीय विद्युत अधिनियम, 1910 की धारा 5, धारा 6 और धारा 7-क में जो संशोधन किए गए हैं वे सारवान रूप से दूरव्यापी हैं। संशोधन अधिनियम की धारा 2 द्वारा मूल अधिनियम की धारा 5 संशोधित की गई थी जिसके द्वारा धारा 5 की उपधारा (2) में 'उपक्रम की क्रय कीमत' अभिव्यक्ति के स्थान पर 'रकम' अभिव्यक्ति प्रतिस्थापित की गई थी। संशोधन अधिनियम की धारा 3 द्वारा, जिसके द्वारा मूल अधिनियम की धारा 6 की उपधारा (7) संशोधित की गई थी, धारा 6 की उपधारा (7) में आने वाले 'क्रय कीमत' शब्दों के स्थान पर 'रकम' शब्द प्रतिस्थापित किया गया था। संशोधन अधिनियम की धारा 4 द्वारा मूल अधिनियम की धारा 7-क में किए गए संशोधन भी समान रूप से सारवान् थे। यह स्मरण करा दिया जाए कि मूल अधिनियम की धारा 7-क में यह उपबंधित है कि जहां किसी अनुज्ञप्तिधारी के, जो स्थानीय प्राधिकरण नहीं है, उपक्रम का धारा 5 की उपधारा (1) के अधीन विक्रय कर दिया गया हो वहां उपक्रम की क्रय कीमत, क्रय के समय अथवा जहां धारा 5 की उपधारा (3) के अधीन क्रय के पूर्व उपक्रम का परिदान कर दिया गया है वहां उपक्रम के परिदान के समय उपक्रम का बाजार मूल्य होगी और यह कि यदि ऐसी क्रय कीमत के संबंध में कोई मतभेद या विवाद हो तो उसका अवधारण माध्यस्थम् द्वारा किया जाएगा। किंतु संशोधन अधिनियम की धारा 4 द्वारा पुरानी धारा 7-क के स्थान पर पूर्णतः भिन्न उपबंध प्रतिस्थापित किया गया था। इसके द्वारा 'बाजार मूल्य' के स्थान 'पर बही, मूल्य' प्रतिस्थापित किया गया था। संशोधन के पश्चात् मूल अधिनियम की धारा 5(2), धारा 6(7) और धारा 7-क इस प्रकार है—

*"धारा 5(2) : जहां उपधारा (1) के अधीन किसी उपक्रम का विक्रय किया

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

"Section 5 (2) : Where an undertaking is sold under sub-section (1) the purchaser shall pay to the licence an amount in

जाता है वहां क्रेता अनुज्ञप्तिधारी को धारा 7-क की उपधारा (1) और (2) के उपबंधों के अनुसार रकम का संदाय करेगा।"

25. धारा 6 की उपधारा (7), संशोधन के पश्चात्, इस प्रकार है—

*"धारा 6 (7) : जहां इस धारा के अधीन किसी उपक्रम का क्रय किया जाता है वहां क्रेता अनुज्ञप्तिधारी को धारा 7-क की उपधारा (1), (2), और (3) के उपबंधों के अनुसार अवधारित रकम का संदाय करेगा।"

26. धारा 7-क इस प्रकार है :

**"7-क : संदेय रकम का अवधारण—(1) जहां किसी अनुज्ञप्तिधारी के किसी उपक्रम का धारा 5 की उपधारा (1) के अधीन विक्रय किया जाता है या धारा 6 के अधीन क्रय किया जाता है वहां उपक्रम के लिए संदेय रकम क्रय के समय अथवा जहां धारा 5 की उपधारा (3) के अधीन क्रय के पूर्व उपक्रम का परिदान कर दिया गया है वहां उपक्रम के परिदान के समय उपक्रम का बही मूल्य होगी।

(2) उपधारा (1) के प्रयोजन के लिए किसी उपक्रम का बही मूल्य तत्समय प्रवृत्त विधि के अधीन अनुज्ञप्तिधारी के संपरीक्षित तुलनपत्र में यथा-दर्शित अनुज्ञप्तिधारी की सभी भूमियों, भवनों, संकर्मों, सामग्री और संयत्र का ह्रसित बही मूल्य समझा जाएगा जो (i) ऐसे उत्पादन केंद्र से, जिसके बारे में अनुज्ञप्तिधारी द्वारा यह घोषित किया गया है कि वह क्रय के प्रयोजन के लिए उपक्रम का भाग नहीं होगा और (ii) सेवा लाइनों या अन्य पूंजी संकर्म या उसके किसी भाग से, जो

---

accordance with the provision of sub-sections (1) and (2) of Section 7-A."

*"Section 6 (7) : Where an undertaking is purchased under this section, the purchaser shall pay to the licensee an amount determined in accordance with the provisions of sub-sections (1), (2) and (3) of Section 7A."

**"7-A. Determination of amount payable—(1) Where an undertaking of a licensee is sold under sub-section (1) of Section 5 or purchased under Section 6, the amount payable for the undertaking shall be the book value of the undertaking at the time of purchase or where the undertaking has been delivered before the purchase under sub-Section (3) of Section 5, at the time of delivery of the undertaking.

(2) The book value of an undertaking for the purpose of sub-section (1) shall be deemed to be the depreciated book value as shown in the audited balance-sheet of the licensee under the law for the time being in force, of all lands, buildings, works, materials and plant of the licensee, suitable to and used by him for the purpose of the undertaking, other than (i) a generating station declared by the licensee not to form part to the undertaking for the purpose of

उपभोक्ताओं के व्यय पर सन्निर्मित किया गया है, भिन्न किंतु अनिवार्य क्रय के या गुडविल के या किसी लाभ के संबंध में किसी परिवर्धन के बिना जो उस उपक्रम से या किसी ऐसे समान प्रतिफल से कमाया जाए या कमाया गया हो, उपक्रम के प्रयोजन के लिए उपयुक्त हो या उसके द्वारा उसका उपयोग किया गया हो।

(3) अनिवार्य क्रय के लिए अनुज्ञप्तिधारी को संदेय किसी अतिरिक्त राशि के, चाहे उसे किसी भी नाम से पुकारा जाए, संबंध में किसी अनुज्ञप्ति या किसी लिखत, आदेश, करार या तत्समय प्रवृत्त किसी विधि में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी अनुज्ञप्तिधारी धारा 6 के अधीन उसके उपक्रम के अनिवार्य क्रय के लिए उपधारा (1) और (2) के अधीन यथा अवधारित बही मूल्य के केवल दस प्रतिशत तोषण के लिए हकदार होगा।

(4) तत्समय प्रवृत्त किसी अधिनियम के किसी उपबंध का, जिसके अंतर्गत इस अधिनियम के और तदधीन बनाए गए किन्हीं नियमों के, या किसी लिखत के, जिसमें अनुज्ञप्ति सम्मिलित है, अन्य उपबंध भी हैं, ऐसे अधिनियमों के किसी अधिनियम या तदधीन बनाए गए किसी नियम के आधार पर प्रभाव है जहां तक वह इस धारा के उपबंधों में से किसी उपबंध से असंगत है, कोई प्रभाव नहीं होगा।"

27. इस ओर संकेत करना तात्विक है कि संशोधन अधिनियम की धारा 1 की उपधारा (3) में यह उपबंधित है कि संशोधन अधिनियम के बारे में यह समझा जाएगा कि वह 27 सितंबर, 1972 से प्रवृत्त हुआ है जो कि पूर्वतर अध्यादेशों के प्रख्यापन की तारीख थी।

---

purchase, and (ii) service lines or other capital works or any part thereof which have been constructed at the expense of the consumers, but without any addition in respect of compulsory purchase or of goodwill or any profit which may be or might have been made from the undertaking or of any similar consideration.

(3) Notwithstanding anything contained in any licence or any instrument, order, agreement or law for the time being in force in respect of any additional sum by whatever name may it be called, payable to a licensee for compulsory purchase, the licensee shall be entitled only to a solatium of ten per centum of the book value as determined under sub-sections (1) and (2) for compulsory purchase of his undertaking under Sec. 6.

(4) No provision of any Act for the time being in force including the other provisions of this Act and of any rules made thereunder or of any instrument including licence have effect by virtue of any of such acts or any rule made thereunder, shall, in so for as it is inconsistent with any of the provisions of this section, have any effect."

28. अब हम अर्जन अधिनियम अर्थात् 1973 के असम अधिनियम 10 के तात्विक उपबंधों पर विचार करेंगे। धारा 1(3) में यह उपबंधित है कि अधिनियम के बारे में यह समझा जाएगा कि वह 27 सितंबर, 1972 से प्रवृत्त हुआ है। निर्वचन खंड (धारा 2) के खंड (च), (ज), (ञ) और (ठ) इस प्रकार हैं—

*"2(च) : 'स्थिर आस्तियों' के अंतर्गत संकर्म, अतिरिक्त पुर्जे, स्टोर सामान, औजार, मोटर और अन्य यान, कार्यालय सामग्री और फर्नीचर भी हैं;

2(ज) : 'अनुज्ञप्तिधारी' से, यथास्थिति, तिनसुखिया इलैक्ट्रिक सप्लाई कंपनी लिमिटेड और/या डिब्रुगढ़ इलैक्ट्रिक सप्लाई कंपनी प्राईवेट लिमिटेड अभिप्रेत है;

2(ञ) : 'उपक्रम' से यथास्थिति, तिनसुखिया इलैक्ट्रिक सप्लाई उपक्रम, जिसका स्वामित्व और प्रबंध तिनसुखिया इलैक्ट्रिक सप्लाई कंपनी लिमिटेड के अधीन और/या डिब्रुगढ़ इलैक्ट्रिक सप्लाई उपक्रम जिसका स्वामित्व और प्रबंध डिब्रुगढ़ इलैक्ट्रिक सप्लाई कंपनी प्राइवेट लिमिटेड के अधीन है, अभिप्रेत है;

2(1) : 'संकर्म' के अंतर्गत ऊर्जा के प्रदाय के लिए और विद्युत अधिनियम के अधीन प्रदान की गई अनुज्ञप्ति के उद्देश्य को क्रियान्वित करने के लिए अपेक्षित विद्युत प्रदाय लाइनें और भूमियां, भवन, मशीनरी या साधित्र भी हैं।"

29. धारा 3(2) में यह उपबंधित है—

**"3(2). उपक्रम के क्रय के लिए अनुज्ञप्तिधारी को विद्युत अधिनियम या विद्युत प्रदाय अधिनियम के उपबंधों में से किसी उपबंध के अधीन दी गई कोई सूचना

अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :—

"2(f) : 'Fixed Assets' includes works, spare parts, stores, tools, motor and other vehicles, office equipment and furniture;

2 (h) : 'Licensee' means the Tinsukia Electric Supply Company Ltd. and/or the Dibrugarh Electric Supply Company Private Ltd., as the case may be;

2 (j) : 'Undertaking' means the Tinsukia Electric Supply Undertaking owned and managed by the Tinsukia Electric Supply Company Ltd. and/or the Dibrugarh Electric Supply Undertaking owned and managed by the Dibrugarh Electric Supply Company Private Ltd., as the case may be;

2(1) : 'Works' includes electric supply lines and any lands, buildings, machinery or apparatus required to supply energy and to carry into effect the object of a licence granted under the Electricity Act;."

**"3 (2) : Any notice given under any of the provisions of the Electricity Act or the Electricity Supply Act to the licensee for the purchase of the undertaking and in pursuance of which notice the

और जिस सूचना के अनुसरण में वह उपक्रम इस अधिनियम के प्रारंभ के पूर्व क्रय नहीं किया गया है, व्यपगत हो जाएगी और उसका कोई प्रभाव नहीं होगा।

स्पष्टीकरण —यथापूर्वोक्त दी गई किसी सूचना के अनुसरण में सरकार या बोर्ड पर किसी उपक्रम को क्रय करने की कोई बाध्यता नहीं होगी और न ही ऐसी सूचना की तामील के बारे में यह समझा जाएगा कि वह सरकार को इस अधिनियम के अधीन उपक्रम के संबंध में नए सिरे से कोई कार्यवाही करने से रोकती है।"

30. धारा 4 में यह उपबंधित है—

*"4. निहित होने की तारीख— तिनसुखिया और डिब्रुगढ़ इलैक्ट्रिक सप्लाई उपक्रम 27 सितंबर, 1972 को 11.30 पूर्वाह्न से सरकार को अंतरित हुए समझे जाएंगे और सरकार में निहित हो जाएंगे।"

31. धारा 5 में सरकार द्वारा इस प्रकार अर्जित उपक्रम के बोर्ड को अंतरित करने के लिए उपबंध हैं।

32. धारा 6 में अनुज्ञप्तिधारी को संदेय कुल रकम के बारे में उपबंध हैं।

**"6. अनुज्ञप्तिधारी को संदेय कुल रकम—(1) किसी अनुज्ञप्तिधारी को संदेय कुल रकम नीचे विनिर्दिष्ट रकमों का संकलित मूल्य होगा—

(i) उपक्रम से सन्नद्ध फायदाप्रद उपयोग में और सरकार द्वारा ग्रहण कर लिए गए सभी संपूरित संकर्मों का (उन संकर्मों को छोड़कर जिनके लिए उपभोक्ताओं द्वारा संदाय किया गया है) बही मूल्य, जिसमें से अनुसूची 1 के अनुसार संगणित अवक्षयण घटा दिया जाएगा;

---

undertaking has not been purchased before the commencement of this Act, shall lapse and be of no effect.

Explanation : There shall be no obligation on the part of the Government of the Board to purchase any undertaking in pursuance of any notice given as aforesaid, nor shall be service of such notice be deemed to prevent the Government from taking any proceeding de novo in respect of the undertaking under ihis Act,"

*"4. Vesting date. The Tinsukia and Dibrugrah Electric Supply Undertakings shall be deemed to be transferred to and shall vest in the Government, on the 27th day of September, 1972, at 11:30 P.M."

**"6. Gross amount payable to Lincensee—(1) The gross amount payable to a licensee shall be the aggregate value of the amounts specified below :

(i) the book value of all completed works in beneficial use pertaining to the undertaking and taken over by the Government (excluding works paid for by consumers) less depreciation calculated in accordance wlth Schedule I;

(ii) सरकार द्वारा ग्रहण कर लिए गए चालू सभी संकर्मों का, उन संकर्मों को छोड़कर जिनके लिए उपभोक्ताओं या भावी उपभोक्ताओं द्वारा संदाय किया गया है, बही मूल्य;

(iii) सरकार द्वारा ग्रहण कर लिए गए सभी स्टोर सामान का, जिसके अंतर्गत अतिरिक्त पुर्जे भी हैं बही मूल्य और उपयोग में लाए गए स्टोर सामान और अतिरिक्त पूर्जों की दशा में, यदि ग्रहण कर लिए गए हैं तो ऐसी राशियां जो सरकार द्वारा विनिश्चित की जाएं;

(iv) निहित होने की तारीख को उपयोग में की और सरकार द्वारा ग्रहण कर ली गई सभी अन्य स्थिर आस्तियों का बही मूल्य, जिसमें से अनुसूची 1 के अनुसार संगणित अवक्षयण घटा दिया जाएगा;

(v) निहित होने की तारीख को विद्यमान सभी संयंत्रों और उपस्करों का, यदि सरकार द्वारा उन्हें ग्रहण कर लिया गया है, किंतु उनका उपयोग टूट-फूट या अप्रचलन के कारण नहीं किया जा रहा है, उस सीमा तक जिस तक अनुज्ञप्तिधारी के बहियों में उनका मूल्य बट्टे-खाते नहीं डाला गया है, बही मूल्य, जिसमें से अनुसूची 1 के अनुसार संगणित अवक्षयण घटा दिया जाएगा;

(vi) धारा 7 (1) (ii) में निर्दिष्ट प्रत्येक अवक्रय करार के संबंध में उपभोक्ताओं से शोध्य रकम, जिसमें से वह राशि घटा दी जाएगी जो किस्तों

(ii) the book value of all works in progress taken over by the Government, excluding works paid for by consumers or prospective consumers;

(iii) the book value of all stores including spare parts taken over by the Government and in the case of used stores and spare parts, if taken over, such sums as may be decided upon by the Government;

(iv) the book value of all other fixed assets in use on the vesting date and taken over by the Government less depreciation calculated in accordance with Schedule I;

(v) the book value of all plants and equipments existing on the vesting date, if taken over by the Government, but no longer in use owing to wear and tear or to obsolescence, to the extent such value has not been written off in the books of the licensee less depreciation calculated in accordance with Schedule I;

(vi) the amount due from consumers in respect of every hire-purchase agreement referred to in Sec. 7 (i) (ii) less a sum which bears to the difference between the total amount of the

की कुल रकम और सामग्री या उपस्कर की मूल लागत के बीच अन्तर है उसी अनुपात में होगी जो शोध्य रकम किस्तों की कुल रकम के संबंध में है;

(vii) धारा 7 (1) (ii) में निर्दिष्ट प्रत्येक संविदा के संबंध में अनुज्ञप्तिधारी द्वारा वस्तुतः संदत्त कोई रकम।

स्पष्टीकरण—किसी स्थिर आस्ति के बही मूल्य से उसकी मूल लागत अभिप्रेत है और उसमें निम्नलिखित समाविष्ट है—

(i) आस्ति के लिए अनुज्ञप्तिधारी द्वारा संदत्त क्रय कीमत, जिसके अंतर्गत परिदान का खर्च और उस आस्ति को परिनिर्मित करने और फायदाप्रद उपयोग में लाने के लिए उचित रूप से उपगत सभी प्रभार भी हैं जैसे कि उपक्रम की बहियों में उपदर्शित किए गए हैं;

(ii) वस्तुतः उपगत पर्यवेक्षण का खर्च किंतु जो पैरा (i) में निर्दिष्ट रकम के 15 प्रतिशत से अधिक न हो;

परंतु इस उपधारा के अधीन रकमों का विनिश्चय करने से पूर्व अनुज्ञप्तिधारी को कम से कम पंद्रह दिन की सूचना देने के पश्चात् सरकार द्वारा सुनवाई का अवसर दिया जाएगा।

(2) इसके अतिरिक्त, उपधारा (1) के खंड (i) से (iv) के अधीन निर्धारित रकमों के 10 प्रतिशत में बराबर राशि सरकार द्वारा अनुज्ञप्तिधारी को संदत्त की जाएगी।

---

instalments and the original cost of the material or equipment, the same proportion as the amount due bears to the total amount of the instalments;

(vii) any amount paid actually by the licensee in respect of every contract referred to in Section 7 (1) (iii).

Explanation—The book value of any fixed asset means its original cost and shall comprise—

(i) the perchase price paid by the licensee for the asset, including the cost of delivery and all charges and bringing the asset into beneficial use as shown in books of the undertaking;

(ii) the cost of supervision actually incurred but not exceeding fifteen per cent of the amount referred to in paragraph (i) :

Provided that before deciding the amounts under this sub-section, the licensee shall be given an apportunity by the Government of being heard, after giving him a notice of at least 15 days therefor.

(2) In addition a sum equal to 10 percent of the amounts assessed under Clauses (i) to (iv) of sub-section (1) shall be paid to the licensee by the Government.

(3) जब उस कालावधि के अवसान के पश्चात् जिससे अंतिम वार्षिक लेखा संबंधित है, अनुज्ञप्तिधारी द्वारा कोई आस्ति अर्जित की जाती है तब उस आस्ति का बही मूल्य ऐसा होगा जैसा सरकार द्वारा विनिश्चित किया जाए :

परंतु ऐसा किसी आस्ति का बही मूल्य विनिश्चित करने से पूर्व अनुज्ञप्तिधारी को कम से कम पन्द्रह दिन की सूचना देने के पश्चात् सरकार द्वारा सुनवाई का अवसर दिया जाएगा ।"

33. धारा 7 में यह उपबंधित है—

*"7. उपक्रमों का निहित होना—(1) उपक्रम के संबंध में नीचे विनिर्दिष्ट संपत्ति, अधिकार, दायित्व और बाध्यताएं निहित होने की तारीख को सरकार में निहित हो जाएंगी—

(i) अनुज्ञप्तिधारी की सभी स्थिर आस्तियां और उपक्रम से संबंधित सभी दस्तावेजें;

(ii) निहित होने की तारीख से पूर्व सद्भावपूर्वक किए गए सामग्री या उपस्कर के प्रदाय के लिए अवक्रय करारों के, यदि कोई हों, अधीन अनुज्ञप्तिधारी के सभी अधिकार, दायित्व और बाध्यताएं;

(iii) निहित होने की तारीख से पूर्व सद्भावपूर्वक की गई किसी अन्य संविदा के, जो धन के उधार लेने या उधार पर देने से या कर्मचारिवृंद के

---

(3) When any asset is acquired by the licensee after the expiry of the period to which the latest annual accounts relate, the book value of the asset shall be such as may be decided upon by the Government :

Provided that before deciding the book value of any such asset, the licensee shall be given an apportunity by the Government of being heard after giving him a notice of at least 15 days therefor."

*"7. Vesting of undertakings—(1) The property, rights, liabilities and obligations specified below in respect of the undertaking shall vest in the Government on the vesting date—

(i) all the fixed assets of the licensee and all the documents relating to the undertaking;

(ii) all the rights, liabilities, and obligations of the licensee under hire-purchase agreements, if any, for the supply of materials or equipment made *bona fide* before the vesting date;

(iii) all the rights, liabilities and obligations of the licensee under any other contract entered into *bona fide* before the vesting date, not being a contract relating to the

नियोजन से संबंधित संविदा नहीं है, अधीन अनुज्ञप्तिधारी के सभी अधिकार, दायित्व और बाध्यताएं।

(2) उपधारा (1) (i) में विनिर्दिष्ट सभी आस्तियां सरकार में, ऋणों, बंधकों या अनुज्ञप्तिधारी की या उपक्रम से संलग्न समरूप बाध्यताओं से मुक्त, निहित हो जाएंगी।

परंतु ऐसे ऋण, बंधक या बाध्यताएं, आस्तियों के लिए इस अधिनियम के अधीन संदेय रकम से संलग्न होंगी।

(3) किसी ऐसे उपक्रम की दशा में जो इस अधिनियम के अधीन सरकार में निहित है, विद्युत अधिनियम के भाग II के अधीन उसे प्रदान की गई अनुज्ञप्ति के बारे में यह समझा जाएगा कि वह निहित होने की तारीख को समाप्त हो गई है और उस तारीख से पूर्व विद्युत प्रदाय करने के लिए किए गए किसी करार के अधीन अनुज्ञप्तिधारी के सभी अधिकार, दायित्व और बाध्यताएं सरकार को न्यागत हो जाएंगी या न्यागत हो गई समझी जाएंगी :

परंतु जहां कोई ऐसा करार सरकार द्वारा अनुमोदित और निहित होने की तारीख को प्रवृत्त प्रदाय की दरों और शर्तों के अनुरूप नहीं हैं वहां वह करार सरकार के विकल्प पर शून्यकरणीय होगा।

(4) किसी ऐसे उपक्रम के संबंध में, जिसे धारा 4 लागू होती है, निहित होने की तारीख को और उसके पश्चात्, किसी ऐसी बाधा को जो उसमें आए या डाली जाए, हटा कर सरकार या उसके प्राधिकृत प्रतिनिधि के लिए यह विधिपूर्ण होगा कि

---

borrowing or lending of money, or to the employment of staff.

(2) All the assets specified in sub-section (1) (i) shall vest in the Government free from any debts, mortgages or similar obligations of the licensee or attaching to the undertaking;

(3) In the case of an undertaking which vests in the Government under this Act, the license granted to it under part II of the Electricity Act shall be deemed to have been terminated on the vesting date and all the rights, liabilities and obligations of the licensee under any agreement to supply electricity entered into before that date shall devolve or shall be deemed to have devolved on the Government :

Provided that where any such agreement is not in conformity with the rates and conditions of supply approved by the Government and in force on the vesting date, the agreement shall be voidable at the option of the Government.

(4) In respect of any undertaking to which Section 4 applies, it shall be lawful for the Government or their authorised representative on and after the vesting date, after removing any obstruction that may be or might have been offered, to take

वह, यथास्थिति, उस समस्त उपक्रम का या स्थिर आस्तियों का तथा उपक्रम से संबंधित ऐसी सभी दस्तावेजों का कब्जा ले ले जो सरकार को उसे चलाए रखने के लिए अपेक्षित हो।

(5) सभी दायित्व और बाध्यताएं, जो उपधारा (1) और (3) के अधीन सरकार में निहित होने वाले दायित्वों और बाध्यताओं से भिन्न हैं, निहित होने की तारीख के पश्चात् अनुज्ञप्तिधारी के दायित्व और बाध्यताएं बनी रहेंगी।

स्पष्टीकरण— निहित होने की तारीख तक कर्मचारिवृंद, करों, भविष्य निधि, कर्मचारी राज्य बीमा, औद्योगिक विवादों और अन्य सभी विषयों से संबंधित सभी दायित्व और बाध्यताएं निहित होने की तारीख के पश्चात् अनुज्ञप्तिधारी के दायित्व और बाध्यताएं बनी रहेंगी।"

34. धारा 9 में यह उपबंधित है—

*"9. कुल रकम से कटौतियां—सरकार किसी अनुज्ञप्तिधारी को इस अधिनियम के अधीन संदेय कुल रकम में से निम्नलिखित राशियों की कटौती करने के लिए हकदार होगी—

(क) अग्रिम रूप से पहले ही संदत्त रकम, यदि कोई हो;

(ख) धारा 8 में विनिर्दिष्ट रकम, यदि कोई हो;

(ग) निहित होने की तारीख से पूर्व बोर्ड द्वारा प्रदाय की गई ऊर्जा के लिए बोर्ड को अनुज्ञप्तिधारी से शोध्य रकम, यदि कोई हो, जिसके अंतर्गत उस पर ब्याज भी है;

---

possession of the entire undertaking, or as the case may be the fixed assets and of all documents relating to the undertaking which the Government may require for carrying it on.

(5) All the liabilities and obligations, other than those vesting in the Government under sub-Sections (1) and (3), shall continue to be the liabilities and obligations of the licensee, after the vesting date ;

Explanation—All liabilities and obligations in respect of staff, taxes, provident fund, employees' state Insurance, Industrial disputes and all other matters, upto and including the vesting date, shall continue to be the liabilities and obligations of the licensee, after the vesting date.

*"9. Deductions from the gross amount. The Govenment shall be entitled to deduct the following sums from the gross amount payable under this Act to a licensee—

(a) the amount, if any, already paid in advance;

(b) the amount if any, specified in Sec. 8;

(c) the amount due, if any, including interest thereon, from the licensee to the Board, for energy supplied by the Board before the vesting date;

(घ) अनुज्ञप्तिधारी से सरकार को शोध्य सभी रकमें और ब्याज की बकाया, यदि उस पर कोई हो;

(ङ) उपक्रम की किसी संपत्ति या अधिकारों के सरकार को न सौंपे जाने के कारण सरकार द्वारा उठाई गई हानि के समतुल्य रकम, यदि कोई हो, ऐसी हानि की रकम वह रकम समझी जाएगी जिससे ऐसी संपत्ति या अधिकारों का बाजार मूल्य इस अधिनियम के अधीन उसके लिए संदेय रकम से अधिक है, तथा ऐसी कोई आय जो सरकार द्वारा, यदि निहित होने की तारीख को वह संपत्ति या अधिकार उसे सौंप दिए गए होते, वसूल की गई होती;

(च) सरकार के प्राधिकार द्वारा या उसके अधीन गठित किसी वित्तीय संस्था को अनुज्ञप्तिधारी से शोध्य सभी उधारों की रकम और बकाया या ब्याज, यदि उस पर कोई हो;

(छ) प्रतिभूति निक्षेप के रूप में उपभोक्ताओं द्वारा संदत्त सभी राशियां और निहित होने की तारीख को उन पर शोध्य ब्याज की बकाया, जहां तक वे अनुज्ञप्तिधारी द्वारा सरकार को संदत्त नहीं किए गए हैं, इनमें से वे रकमें घटा दी जाएंगी जो अनुज्ञप्तिधारी की बहियों के अनुसार अनुज्ञप्तिधारी द्वारा उस तारीख से पूर्व प्रदाय की गई ऊर्जा के लिए उपभोक्ताओं से उसे शोध्य हैं;

(ज) उपभोक्ताओं और भावी उपभोक्ताओं से प्राप्त सभी अग्रिम धन और ऐसी सभी राशियां, जो उपभोक्ताओं की निधि के जमा खाते में अलग रख दी गई हैं

(d) all amounts and arrears of interest, if any thereon, due from the licensee to the Government;

(e) the amount, if any, equivalent to the loss sustained by the Government by reason of any property or rights belonging to the undertaking not having been handed over to the Government, the amount of such loss being deemed to be the amount by which the market value of such property or rights exceeds the amount payable therefor under this Act, together with any income which might have been realized by the Government, if the property or rights had been handed over on the vesting date;

(f) the amount of all loans due from the licensee to any financial institutions constituted by or under the authority of the Government and arrears, or interest, if any, thereon;

(g) all sums paid by consumers by way of security deposit and arrears of interest due thereon on the vesting date, in so far as they have not been paid over by the licensee to the Government, less the amounts which according to the books of the licensee are due from the consumers to the licensee for energy supplied by him before that date;

(h) all advances from consumers and prospective consumers, and all sums which have been or ought to be set

1989(4) eILR(PAT) SC 36

या रख दी जाएं, जहां तक ऐसे अग्रिम धन या राशियां अनुज्ञप्तिधारी द्वारा सरकार को संदत्त नहीं की गई हैं ;

(झ) टैरिफ और लाभांश नियंत्रण आरक्षिति, आकस्मिकता आरक्षिति और विकास आरक्षित में अवशिष्ट रकमें, जहां तक ऐसी रकमें अनुज्ञप्तिधारी द्वारा सरकार को संदत्त न कर दी गई हों;

(ञ) धारा 11 (2) और 11 (3) में यथा विनिर्दिष्ट रकम, यदि कोई हो;

(ट) धारा 7 (2) के परंतुक में यथावर्णित ऋणों, बंधकों या बाध्यताओं से संबंधित रकम, यदि कोई हो :

परंतु इस धारा के अधीन कोई कटौती करने से पूर्व अनुज्ञप्तिधारी को सूचना दी जाएगी कि वह ऐसी सूचना की प्राप्ति की तारीख से पंद्रह दिन की कालावधि के भीतर ऐसी कटौतियों के विरुद्ध हेतुक दर्शित करे।"

35. धारा 10 द्वारा सरकार को किसी ऐसे व्यक्ति को, जिसे लेखाओं से संबंधित विषयों में पर्याप्त ज्ञान और अनुभव प्राप्त हो, लिखित आदेश द्वारा विशेष अधिकारी के रूप में नियुक्त करने के लिए समर्थ बनाया गया है कि वह धारा 9 में प्रगणित कटौतियां करने के पश्चात् इस अधिनियम के अधीन संदेय शुद्ध रकम निर्धारित करे।

36. धारा 20 में यह उपबंधित है—

*"20. माध्यस्थम्—(1) जहां नीचे विनिर्दिष्ट विषयों में से किसी विषय के संबंध में कोई विवाद उत्पन्न होता है, वहां वह सरकार द्वारा नियुक्त ऐसे

---

aside to the credit of the consnmers' fund, in so far as such advances or sum have not been paid over by the licensee to the Government;

(i) the amounts remaining in Tariffs and Dividends Control Reserve, Contingencies Reserve and Development Reserve, in so far as such amounts have not been paid over by licensee to the Government;

(j) the amount, if any, as specified in Sec. 11 (2) and 11 (3);

(k) the amount, if any, relating to debts, mortgages or obligations as mentioned in proviso to Sec. 7 (2) :

Provided that before making any deduction under this section, the licensee shall be given a notice to show cause against such deduction, within a period of fifteen days from the date of receipt of such notice."

*"20. Arbitration. (1) Where any dispute aries in respect of any of the matters specified below, it shall be determined by an

माध्यस्थम् द्वारा अवधारित किया जाएगा जो जिला या उच्च न्यायालय का आसीन या सेवा-निवृत्त न्यायाधीश होगा—

(क) क्या उपक्रम की कोई संपत्ति या उसका कोई अधिकार, दायित्व या बाध्यता सरकार में निहित है;

(ख) क्या कोई स्थिर आस्ति उपक्रम का भाग है;

(ग) क्या धारा 7 (1) (ii) या (iii) में निर्दिष्ट कोई संविदा या अवक्रय करार या कोई अन्य संविदा सद्भावपूर्वक की गई है या नहीं;

(घ) क्या निहित होने की तारीख से पूर्व अनुज्ञप्तिधारी द्वारा विद्युत प्रदाय करने के लिए किया गया कोई करार धारा 7(3) के परंतुक में निर्दिष्ट प्रकृति का है।

(2) इस धारा के उपबंधों के अधीन रहते हुए माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 (1940 का केंद्रीय अधिनियम 10) के उपबंध इस अधिनियम के अधीन सभी माध्यस्थमों को लागू होंगे।"

37. अधिनियम की धारा 23 में इस प्रभाव की घोषणा सम्मिलित है कि विधान भारत के संविधान के अनुच्छेद 39 (ख) में अंतर्विष्ट राज्य की नीति के निदेशक तत्व सुनिश्चित करने की राज्य की नीति को प्रभावी करने के लिए है।

38. दोनों विधानों पर, पहला भारतीय विद्युत अधिनियम, 1910 की धारा 5(2), 6 (7) और 7-क के उपबंधों का संशोधन करने वाला और दूसरा दोनों उपक्रमों का अर्जन करने के लिए उपबंध करने वाला, याची ने अनेक आधारों पर आक्षेप किया है। लेकिन मुख्य आक्षेप यह है कि निजी बातचीत और क्रय करने के विकल्प के प्रयोग करने के दौरान अधिनियमित किए गए विधान, जैसे कि वे थे, सद्भावपूर्ण नहीं हैं बल्कि वे

---

arbitrator appointed by the Government, who shall be a sitting or retired District or High Court Judge—

(a) Whether any property belonging, or any right liability or obligation attaching to the undertaking, vests in the Government;

(b) Whether any fixed asset forms part of the undertaking;

(c) Whether any contract or hire purchase agreement or other contract referred to in Sec. 7 (1) (ii) or (iii) has been entered into *bona fide* or not;

(d) Whether any agreement to supply electricity entered into by the licensee prior to the vesting date is of the nature referred to in proviso to S. 7 (3).

(2) Subject to the provisions of this section, the provisions of the Arbitration Act, 1940 (Central Act 10 of 1940) shall apply to all arbitrations under this Act."

विधायी शक्ति के आभासी प्रयोग मात्र हैं और यह कि सब प्रकार से दोनों विधानों के वास्तविक उद्देश्य का संविधान के अनुच्छेद 39 के खंड (ख) में परिकल्पित उद्देश्य से कोई सीधा संबंध नहीं है और यह कि जिस संदर्भ में विधान अधिनियमित किया गया था उसका सतर्कता से और दृढ़ता से विवेचन किए जाने पर न्यायिक दृष्टिकोण के समक्ष यह स्पष्ट हो जाएगा कि जो कुछ अर्जित करने का प्रयास किया गया है वह दोनों कंपनियों के 'उपक्रम' नहीं थे बल्कि वह एक ओर उपक्रमों के 'बही मूल्य' के, जिसे राज्य, प्राइवेट संधियों के अधीन, संदाय करने के लिए सहमत हो गया था और किसी भी स्थिति में जिसे राज्य धारा 7-क के, जैसे कि वह उस समय थी, उपबंधों के अधीन संदाय करने के लिए बाध्य था और दूसरी ओर उपक्रम के 'बही मूल्य' के, जिसे विधि प्रतिस्थापित करना चाहती है, बीच वास्तविक अंतर था। यदि अनुच्छेद 31-ग का संरक्षण आवरण किसी प्रकार से आक्षेपित विधि के अधीन संदेय 'रकम' है तो यह कहा गया है कि अनुच्छेद 31 (2) को, जैसे कि वह उस समय था, न्यायिक रूप से स्वीकृत परीक्षणों के लागू किए जाने पर भी वह आभासी होगा। अर्जन विधि के ऐसे कुछ विनिर्दिष्ट उपबंधों की, जिनके द्वारा मूल्यांकन से कुछ मदों को अपवर्जित किया गया था और रकम में से कुछ कटौतियों परिकल्पित और प्राधिकृत की गई थीं, विधिमान्यता पर भी आक्षेप किया गया है।

39. इन रिट याचिकाओं की, रिट याचिकाओं के एक अन्य समूह के साथ अर्थात् 1974 की रिट याचिका सं० 5, 14 और 15, जिनमें तमिलनाडु राज्य के एक सदृश्य कानून की सांविधानिकता पर उन कंपनियों द्वारा आक्षेप किया गया था जिनके उपक्रमों को इस प्रकार अर्जित करने का प्रयास किया गया था तथा 1985 की सिविल अपील सं० 243, 1985 की सिविल अपील सं० 344 और 1985 की सिविल अपील संख्या 4113 के साथ, जो मुंबई उच्च न्यायालय के तारीख 20 जुलाई, 1984 के निर्णय से उद्भूत हुई थी जिसमें महाराष्ट्र राज्य में कुछ प्राइवेट विद्युत प्रदाय उपक्रमों के कानून द्वारा अपेक्षित क्रय के विषय में महाराष्ट्र राज्य विधानमंडल द्वारा भारतीय विद्युत अधिनियम, 1910 में किए गए कतिपय संशोधन को अभिखंडित किया गया था, सुनवाई की गई थी।

40. असम, तमिलनाडु और महाराष्ट्र से उत्पन्न होने वाले मामलों के तीन समूहों की एक साथ सुनवाई की गई थी क्योंकि उन सब में कुछ पहलू एक समान थे। लेकिन मामलों के तथ्यों की सुभिन्नताओं और विशिष्टताओं की दृष्टि से तथा उस विधिक संदर्भ के, जिसमें विनिश्चय के लिए प्रश्न उत्पन्न हुए हैं, संबंध में परिस्थितिजन्य फेरफार की दृष्टि से मामलों के तीनों समूहों का निपटारा पृथक् निर्णयों से किया जा रहा है। प्रस्तुत निर्णय द्वारा असम विधान पर किए गए आक्षेप का निपटारा किया गया है।

41. हमने 1972 की रिट याचिका सं० 457 में याची की ओर से श्री सोली जे० सोराबजी, विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता और श्री हरीश साल्वे, विद्वान् अधिवक्ता और 1972 की रिट याचिका सं० 548 में याची की ओर से श्री रंगराजन, विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता और असम राज्य की ओर से डा० शंकर घोष, विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता और असम राज्य विद्युत बोर्ड और उसके प्राधिकारियों की ओर से श्री जी० एल० संघी, विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता को सुनवाई की है। सुनवाई के समय जो दलीलें दी गई हैं और रिट याचिकाओं में जो प्रश्न विचारार्थ आए हैं, वे इस प्रकार निश्चित किए जाते हैं—

(क) कि 1973 के असम अधिनियम 10 की धारा 23 में की गई घोषणा अविधिमान्य है क्योंकि आक्षेपित अधिनियम का संविधान के अनुच्छेद 39 (ख) के सिद्धांतों के साथ कोई युक्तियुक्त और सीधा संबंध नहीं है और वह केवल ऐसा आवरण है जो विधि को इसलिए ओढ़ाया गया है कि उपक्रमों के आशयित कानूनी विक्रय से उद्‌भूत होने वाली विधिसम्मत बाध्यताओं को नष्ट कर दिया जाए और तदनुसार अनुच्छेद 31-ग लागू नहीं होता।

जो कुछ भी हो किसी कानून का प्रत्येक उपबंध अनुच्छेद 31-ग के संरक्षण का हकदार नहीं है बल्कि केवल वही उपबंध संरक्षण के हकदार हैं जो अनुच्छेद 39 (ख) के सिद्धांत को प्रभावशील करने के लिए बुनियादी तौर पर और अनिवार्य रूप से आवश्यक हैं और यह कि तदनुसार रकम के अवधारण से संबंधित आक्षेपित विधि के उपबंधों को अनुच्छेद 31-ग लागू नहीं होता।

(ख) यह कि वस्तुत: और सारत: विधि विद्युत उपक्रमों के अर्जन के लिए नहीं है बल्कि वह तो केवल 'वाद-वस्तु' के अर्जन के लिए है और उपक्रमों के उस 'बाजार कीमत' के, जिसका राज्य आशयित कानूनी क्रय के अधीन संदाय करने के लिए बाध्य था और उस 'बही मूल्य' के, जिसके लिए आक्षेपित विधानों के अधीन दायित्वों को सीमित करने का प्रयास किया गया है, बीच अंतर के लिए तिनसुखिया कंपनी के वैध अधिकारों को निर्वाचित करने के लिए है।

(ग) यह कि यदि विधानों के लिए अनुच्छेद 31-ग के अधीन उन्मुक्ति उपलभ्य नहीं है तो अर्जन अधिनियम के उपबंधों के अनुसार संदेय 'रकम' पूर्णत: 'आभासी' है और 'दमड़ी के लिए चमड़ी' लेने का प्रयास है।

और तदनुसार विधि संविधान के अनुच्छेद 31 (2) के (जैसे कि वह उस समय था) अधिकारातीत है और उसका अतिक्रमण करती है। अर्जित आस्तियों के 'बाजार मूल्य' का विचार किए बिना उनके 'बही मूल्य' के संदाय से 'रकम' अयथार्थ और आभासी बन जाती है।

(घ) यह है कि 'सेवा लाइनों' का, जो अनुज्ञप्तिधारी के आस्तियों के भाग हैं, मूल्यांकन से अपवर्जन कर देने से विधि असंवैधानिक और अधिकारातीत बन जाती है।

(ङ) यह कि 'रकम' में से 'आरक्षितियों' की कटौती के लिए 'स्थिर आस्तियों' के रूप में उसके ग्रहण कर लिए जाने के अतिरिक्त धारा 9 (1) का उपबंध और अनुज्ञप्ति की अनवसित कालावधि के मूल्यांकन का लोप अयुक्तियुक्त और मनमाना है।

(च) यह कि निहित होने की तारीख के पश्चात् सरकार द्वारा छंटनी किए गए कर्मचारियों को संदाय करने के लिए धारा 11 (3) के अधीन याची-अनुज्ञप्तिधारी का निरंतर दायित्व और अर्जन के लिए संदेय 'रकम' में से ऐसी राशियों की कटौती के लिए उपबंध मनमाना और अयुक्तियुक्त है।

(छ) यह कि यद्यपि धारा 7 (5) के अधीन अनुज्ञप्तिधारी के सभी दायित्व, उन दायित्वों से भिन्न जो विनिर्दिष्टतया निदिष्ट किए गए हैं और अधिनियम के अधीन सरकार द्वारा अभिव्यक्त रूप से ग्रहण कर लिए गए हैं, अनुज्ञप्तिधारी के निरंतर रहने वाले दायित्व हैं तथापि उनमें से कुछ दायित्वों को, जो धारा 9 के खंड (ग), (घ) और (च) में निर्दिष्ट हैं, जिनके लिए इस प्रकार कटौती की गई राशियों को न्यासत: धारण करने के लिए और संबद्ध लेनदारों के फायदे के लिए सरकार की ओर से कोई तत्समान अभिव्यक्त बाध्यता के बिना तथा उस निमित्त याची के लिए कानूनी उन्मोचन के बिना 'रकम' में से कटौती किए जाने योग्य बनाया गया है। यह अनुचित संवृद्धि है।

(ज) यह कि 'अधिनियम' द्वारा ऐसा कोई तंत्र परिकल्पित और उसके अधीन स्थापित नहीं किया गया है जो या तो धारा 9 के खंड (ग), (घ) और (ङ) के अधीन कटौती योग्य रकमों का या धारा 8 के अधीन कटौती योग्य हानियों का न्यायनिर्णयन और अवधारण करे। इससे 'अधिनियम' के उपबंध दुर्दम और अव्यावहारिक घोषित किए जाने के दायी बन जाते हैं।

(झ) यह कि धारा 20 उस धारा के खंड (क) से (घ) में प्रगणित विषयों की ही विवेचना योग्यता को सीमित करती है तथा सरकार और अनुज्ञप्तिधारी के बीच 'अधिनियम' के अधीन उत्पन्न होने वाले अनेक विवादों को उनके तय किए जाने के लिए किसी तंत्र के बिना छोड़ देती है और 'अधिनियम' को भी अव्यावहारिक बना देती है।

42. (क), (ख) और (ग) में दी गई दलीलों के अंतर्गत कतिपय अतिव्यापी क्षेत्र आ जाते हैं। लेकिन मुख्य आक्षेप यह रह जाता है कि 1973 का असम अधिनियम 10 का संविधान के अनुच्छेद 39 के खंड (ख) में परिकल्पित सिद्धांतों की परिणति के साथ कोई युक्तियुक्त और सीधा संबंध नहीं है और यह कि आक्षेपित विधान का अनुच्छेद 39 (ख) के उद्देश्यों के साथ संबंध, मात्र दूरस्थ और अति सूक्ष्म होने के कारण, विधान आभासी विधान है। लेकिन दलीलों पर सुस्पष्टत: विचार किया गया है जिससे कि बहस के दौरान बल देने के लिए जो परिवर्तन किया गया है, उसकी सम्यक् अभिस्वीकृति की जा सके।

43. इस मामले में विधिक और संवैधानिक स्थिति की परीक्षा संविधान के उपबंधों के, जैसे कि वे 1972 में थे, निर्देश से की जानी है। अनुच्छेद 31-ग, 25वें संशोधन द्वारा 20-4-1972 को अंत:स्थापित किया गया था जो 'भाग 4 में अधिकथित सभी उपबंधों को' प्रभावशील करने के लिए विधियों के सरक्षण का विस्तार करने के लिए संविधान (42वां संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा इसके अधिक व्यापक विस्तार के पहले लाया गया था। अनुच्छेद 31-ग में ऐसी विधि के संबंध में संरक्षण प्रदान किया गया है जो अनुच्छेद 39 के खंड (ख) या खंड (ग) में विनिर्दिष्ट सिद्धांतों को सुनिश्चित करने के लिए राज्य की नीति को प्रभावशील करने के लिए है। इसके अतिरिक्त यद्यपि अनुच्छेद 31 को, उस समय तक हटा नहीं दिया गया था तथापि उसकी विषय-वस्तु को कम कर दिया गया था, यहां तक कि संपत्ति के अर्जन के लिए उपबंध करने वाली ऐसी विधि के अधीन, जिसे अनुच्छेद 31-ग का संरक्षण प्राप्त नहीं था, अवधारित 'रकम' की पर्याप्तता न्यायालय के

विचार योग्य नहीं थी और जो कुछ आवश्यक था वह यह था कि वह अयथार्थ या आभासी न हो। उस समय तक संविधान ने न्यायसंगत-समतुल्य या पूर्ण क्षतिपूर्ति सिद्धांत को त्याग दिया था और उसके स्थान पर 'रकम' का विचार रख दिया था और रकम की पर्याप्तता या अपर्याप्तता का प्रश्न न्यायालय के विचार के योग्य बना दिया था।

44. 'संपत्ति के अधिकार' के संबंध में भारतीय सांविधानिक प्रयोग रोचक दृष्टांत प्रस्तुत करते हैं कि किस प्रकार मूलभूत विधि का निर्वचन करने में मतभेद आर्थिक विचारधाराओं और दार्शनिक सिद्धांतों के विरोधों को कभी-कभी छिपाते—या, संभवतः, उच्छन्न करते हैं। संविधान के प्रारंभ से संपत्ति के अधिकार की मूल अधिकार के रूप में धारणा करने से यह इतना अधिक उलझ गया कि प्रारंभिक जोश में ही यह अत्यधिक हावी हो गया और उसकी वेदी पर बहुत से सामाजिक और आर्थिक ध्येयों को बलि चढ़ाना पड़ा तथा सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन का आर्थिक खर्च क्षमता के बाहर हो गया तथा सम सामाजिक व्यवस्था के वचन के सांविधानिक आचार को पूरा करना कठिन हो गया। सांविधानिक मूल्यों के मापदंड में इस अधिकार का महत्व कम होने की सांविधानिक प्रक्रिया अपरिहार्य रूप से चरमबिंदु पर पहुंचने लगी और अंततोगत्वा मूल अधिकारों के भाग में से इस अधिकार को हटा दिया गया। संपत्ति के अधिकार की धारणा को, जिसने अपने अबाध स्वातन्त्र्य सज्जा में उच्छृंखल घोड़े का रूप धारण कर लिया था, सज्जित करने और समाजवादी जामा पहनाने में अनुच्छेद 31-क और 31-ग महत्वपूर्ण सांविधानिक मार्गशिलाएं थे। अनुच्छेद 31-ग का वस्तुतः और सारतः नगरीय संपत्ति से उतना ही संबंध है जितना अनुच्छेद 31-क का कृषि संपत्ति से है।

45. यदि विधि को अनुच्छेद 31-ग का संरक्षण प्राप्त है तो अनुच्छेद 31 (2) के अधीन 'रकम' की विधिमान्यता की सांविधानिक कसौटियों के विषय में न्यायिक संवीक्षा के लिए जो कुछ विद्यमान रह जाता है उसके बारे में इस मामले में जो दलीलें दी गई हैं उनमें न्याय संबंधी सूझबूझ का प्रयोग किया गया है जिसका उद्देश्य पुरातन और जम कर की गई—किंतु हारी गई—विधिक लड़ाइयों के अवशेषों और स्फुलिंगों को पुनरुज्जीवित और पुनर्दीप्त करना है। श्री रंगराजन, विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता, ने **केशवानंद भारती के मामले**[1] में न्यायमूर्ति चंद्रचूड़ के कतिपय संप्रेक्षणों और **तमिलनाडु राज्य और अन्य** बनाम **एल०अबु कावुर बाई और अन्य**[2] में न्यायमूर्ति फजल अली के कतिपय संप्रेक्षणों के, अपने द्वारा सुझाए गए, अर्थान्वयन का उग्रता और पर्याप्त गंभीरता से अवलंब लेते हुए इस बात के प्रयोग का प्रयास किया कि यदि किसी विधि को अनुच्छेद 31-ग का संरक्षण प्राप्त है तो भी न्यायालय से यह अपेक्षा की जाएगी —जब उपबंध पर आक्षेप किया गया हो—कि वह 'रकम' के भ्रामक होने अथवा उसके अवधारण के लिए सिद्धांतों के मनमाना होने के प्रश्न पर विचार करे। विद्वान् काउंसेल ने आगे यह प्रतिपादित किया कि अनुच्छेद 31-ग के होते हुए भी, यह साबित करने का भार कि रकम भ्रामक नहीं है और उसके अवधारण के लिए सिद्धांत मनमाने नहीं हैं, राज्य पर है। हम श्री रंगराजन द्वारा फाइल किए गए लिखित निवेदनों में से इस दलील का सार उद्धृत करते हैं—

---

[1] [1973] 2 उम० नि० प० 159=[1973] सप्लीमेंट एस० सी० आर० 1.

[2] [1984] 2 उम० नि० प० 372=(1984) 1 एस० सी० सी० 515=ए० आई० आर० 1984 एस० सी० 326.

1989(4) eILR(PAT) SC 36

"..........अतः, जहां विधि में प्रतिकर का उपबंध किया गया है वहां अनुच्छेद 31-ग द्वारा उसके संरक्षित होने के बावजूद भी न्यायालय रकम के भ्रामक होने अथवा सिद्धांतों के मनमाना होने के प्रश्न पर विचार कर सकता है। केवल इतना ही नहीं, यह साबित करने का भार कि रकम भ्रामक नहीं है और सिद्धांत मनमाने नहीं हैं, राज्य पर है।"

46. बाद में हम इस बात की परीक्षा करेंगे कि अनुच्छेद 31-ग के प्रभाव पर इस न्यायालय के प्राधिकारपूर्ण निर्णयों के प्रकाश में यह दलील कैसे उपलभ्य हो सकती है और यदि विधि को ऐसा संरक्षण प्राप्त है तो क्या उसकी सांविधानिक उन्मुक्ति की यथेष्ठता अनुच्छेद 14, 19 और 31 (जैसी कि वे उस समय थे) पर आधारित सभी आक्षेपों तक बढ़ेगी।

47. अब हम क्रमानुसार दलीलों की परीक्षा करेंगे। दलील (क) और (ख) पर एक साथ विचार करने की अनुमति दी जाती है।

दलील (क) और (ख) के बारे में

48. प्रस्तुत मामले में श्री सोली जे० सोराबजी ने यह निवेदन किया कि 1973 के असम अधिनियम 10 की धारा 23 में विधायी घोषणा के होते हुए भी यह प्रश्न कि क्या विधान और अनुच्छेद 39 (ख) में परिकल्पित सिद्धांतों के बीच कोई वास्तविक संबंध है, न्यायालय के विचार योग्य है और निस्संदेह अनुच्छेद 31-ग के आकृष्ट होने या लागू होने के लिए ऐसे संबंध या संसर्ग का विद्यमान होना पुरोभाव्य शर्त है। विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन किया कि यह विनिश्चय करने के लिए कि क्या कोई कानून अनुच्छेद 31-ग के भीतर है या नहीं, न्यायालय को विधान की प्रकृति और स्वरूप की परीक्षा करनी होती है और यदि ऐसी संवीक्षा करने पर यह प्रतीत होता है कि उस विधान और अनुच्छेद 39(ख) के सिद्धांतों के बीच कोई संबंध नहीं है तो उस विधान के बारे में यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि वह अनुच्छेद 31-ग के संरक्षण के बाहर है। श्री सोराबजी ने उसके आवरणों और परिधान को हटाते हुए यह कहा कि विधि अपनी वास्तविक प्रकृति प्रदर्शित करेगी कि वह ऐसी है जिसका अनुच्छेद 39 (ख) के साथ स्वीकृत संबंध मात्र एक बहाना है और यह कि उसका प्रयोजन अनुच्छेद 39(ख) में परिकल्पित उद्देश्यों से भिन्न है। विद्वान् काउंसेल का कहना है कि विधान की विधिमान्यता की परीक्षा अनुच्छेद 31-ग के अधीन उन्मुक्ति से स्वतंत्र रूप से की जाएगी।

49. यह प्रतिपादना कि विधि और अनुच्छेद 39 के सिद्धांतों के बीच की विधायी घोषणा अनिश्चायक है और न्यायालय के विचार योग्य है, सुस्थिर है। निस्संदेह अनुच्छेद 31-ग का वह भाग, जिससे ऐसी विधायी घोषणाओं को सांविधानिक पवित्रता और निश्चितता प्रदान करने और न्यायालय के विचार के अयोग्य होने का प्रयास किया गया है, **केशवानंद भारती के मामले**[1] में अभिखंडित किया गया था। अनुक्रम यह है कि जब कभी अनुच्छेद 31-ग के अधीन किसी विधि के लिए किसी उन्मुक्ति का दावा किया जाता है तब न्यायालय को यह परीक्षा करने की शक्ति प्राप्त है कि क्या उस विधि के उपबंध

---

[1] [1973] 2 उम० नि० प० 159=[1973] सप्लीमेंट एस० सी० आर० 1.

अनुच्छेद 39(ख) और (ग) में परिकल्पित सिद्धांतों के कार्यान्वयन के लिए बुनियादी तौर पर और अनिवार्य रूप से आवश्यक हैं। केशवानन्द भारती के मामले[1] में न्यायमूर्ति मैथ्यू के संप्रेक्षणों की ओर ध्यान दिलाया जाता है—

"..........जब कभी यह आपत्ति उठाई जाए कि संसद् या राज्य विधानमंडलों ने अपनी शक्ति का दुरुपयोग किया है और घोषणा ऐसी विधि में कर दी है जो अनुच्छेद 39 (ख) या 39 (ग) में उल्लिखित निदेशक तत्व सुनिश्चित करने वाली राज्य की नीति को प्रभावी नहीं बनाती है तो निश्चय ही न्यायालय उस आपत्ति पर विचार कर सकते हैं और विवाद निपटा सकते हैं।.........." (पृष्ठ 855[2])

"..........यदि न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि घोषणा एक बहाना मात्र है और यह कि विधि का वास्तविक उद्देश्य अनुच्छेद 39 (ख) और (ग) में उल्लिखित निदेशक तत्व सुनिश्चित करने के लिए राज्य की नीति प्रभावी बनाने से भिन्न कुछ और है तो घोषणा न्यायालय को उस विधि के ऐसे किसी भी उपबंध को, जो अनुच्छेद 14, 19 या 31 का अतिक्रमण करता हो, अवैध घोषित करने से रोक न सकेगी। दूसरे शब्दों में, यदि विधि दिखाने के लिए राज्य की नीति को प्रभावी बनाने के लिए पारित की गई हो किंतु मर्म एवं सार की दृष्टि से उसका वास्तविक उद्देश्य कोई अनधिकृत लक्ष्य की पूर्ति हो तो न्यायालय घोषणा रूपी परदे को हटाकर विधि की वास्तविक प्रवृति की जांच कर सकता है।.........."(पृष्ठ 855-856[3])

50. केशवानन्द भारती के मामले[1] में न्यायमूर्ति चंद्रचूड़ ने यह संप्रेक्षित किया—

"मेरी राय में अनुच्छेद 31-ग के अधीन पारित विधियां तभी और केवल तभी कायम रखी जा सकती हैं यदि उस विधि और अनुच्छेद 39(ख) या (ग) में अभिव्यक्त राज्य की नीति के निदेशक तत्वों के बीच सीधा युक्तियुक्त संबंध हो।"

(पृष्ठ 996[4])

51. मिनर्वा मिल्स लिमिटेड बनाम भारत संघ[5] में विद्वान् मुख्य न्यायमूर्ति के संप्रेक्षण भी इसी प्रकार के हैं—

"..........न्यायालय, अनुच्छेद 31-ग के अधीन, इस बारे में अपना समाधान कर सकते हैं कि विधि की अनन्यता इन अर्थों में क्या है और क्या यह किसी निदेशक तत्व के साथ प्रत्यक्ष तथा युक्तियुक्त संबंध अधिरोपित करती है।"

"असंशोधित अनुच्छेद 31-ग के अधीन न्यायिक पुनर्विलोकन के लिए जिस एकमात्र प्रश्न पर विचार करने की स्वतंत्रता है वह यह था कि क्या आक्षेपकृत विधि और अनुच्छेद 39 (ख) और (ग) के उपबंधों के बीच युक्तियुक्त संबंध विद्यमान है।"

---

1 [1973] 2 उम० नि० प० 159=[1973] सप्लीमेंट एस० सी० आर० 1.

2 [1973] 2 उम० नि० प० 1019

3 [1973] 2 उम० नि० प० 1019-1020.

4 [1973] 2 उम० नि० प० 1172.

5 [1981] 3 उम० नि० प० 146=[1981] 1 एस० सी० आर० 206

52. उसी मामले में न्यायमूर्ति भगवती ने यह संप्रेक्षित किया—

"..........जिस प्रश्न पर मैं जोर देना चाहता हूं वह यह है कि संशोधित अनुच्छेद 31-ग किसी ऐसी विधि को संरक्षण प्रदान नहीं करता है जिसका कि किसी निदेशक तत्व के साथ दूरस्थ अथवा क्षीण संबंध हो।"[1]

"..........जहां कि किसी विधि का अधिष्ठायी उद्देश्य किसी निदेशक तत्व को प्रभावशील बनाना हो वहां विधि का प्रत्येक उपबंध इस बात का दावा नहीं कर सकता कि वह ऐसा संरक्षण प्रदान करे।" (पृष्ठ 338[2])

"..........किसी स्टेट्यूट का प्रत्येक उपबंध, जो कि किसी निदेशक तत्व को प्रभावी रूप देने हेतु अधिष्ठायी उद्देश्य रखता है, अधिनियमित किया गया है, वह संरक्षण का हकदार है किंतु स्टेट्यूट के केवल वे उपबंध जो कि आधारभूत रूप से और निश्चित रूप से निदेशक तत्व को प्रभावी रूप देने के लिए आवश्यक हैं, संशोधित अनुच्छेद 31-ग के अधीन संरक्षित है........(पृष्ट 339[3])

53. अतः श्री सोराबजी ने जो प्रस्थापना की है वह श्लाघ्य है किंतु प्रश्न फिर भी यह रहता है कि क्या समुचित परीक्षणों के पश्चात् आक्षेपित कानून संविधान की ऐसी अपेक्षाओं की पूर्ति करने में असफल हुआ है जिससे कि उसे अनुच्छेद 31-ग के अधीन संरक्षण प्राप्त हो सके। विद्वान् काउंसेल ने यह दलील देने का प्रयास किया कि असम राज्य विद्युत बोर्ड ने तारीख 23-5-1972 की कानूनी सूचना द्वारा, जिसमें अनुज्ञप्ति की कालाविधि के अवसान पर उपक्रम को बोर्ड को बेचने के लिए कंपनी से अपेक्षा की गई है, 1910 के अधिनियम की धारा 6(1) के अधीन तिनसुखिया कंपनी के उपक्रम को क्रय करने के विकल्प के प्रयोग कर लिए जाने पर पृथक् और स्वतंत्र विधान के औचित्य द्वारा संविधान के अनुच्छेद 39(ख) में परिकल्पित उद्देश्यों को प्रभावशील करने के प्रयोजन के लिए उपक्रम को अर्जित करने की आगे और आवश्यकता का प्रश्न निस्संदेह अवास्तविक या अस्तित्वहीन था। यह कहा गया है कि 1973 के असम अधिनियम 10 के अधिनियमन का वास्तविक उद्देश्य संविधान के अनुच्छेद 39 (ख) द्वारा परिकल्पित उद्देश्यों को, जिन्हें क्रय के विकल्प के प्रयोग द्वारा पहले ही पूरा किया जा चुका है, प्रभावशील करने के प्रयोजनों के लिए विधि अधिनियमित करना नहीं था, बल्कि उसका उद्देश्य कानूनी विक्रय के अधीन मात्र याची को उसकी विधिसम्मत हकदारियों से वंचित करना है। यह दलील दी गई है कि आक्षेपित विधि द्वारा जो कुछ अर्जित करने का प्रयास किया गया था वह उपक्रम नहीं था बल्कि वह 'बाजार कीमत' और 'बही मूल्य' के बीच अंतर था जो कि आक्षेपित विधान द्वारा परिकल्पित है। अतः यह कहा गया है कि आक्षेपित विधि का प्रयोजन अनुच्छेद 39 (ख) के सिद्धांतों को प्रभावी करने से कुछ भिन्न है। यह भी कहा गया है कि क्रय करने के विकल्प का प्रयोग करके जो कुछ अर्जित किया जाना है—और जो कुछ अर्जित किए जाने का वस्तुतः प्रयास किया गया था—वह मात्र अनुयोज्य दावा या वाद-वस्तु था। आगे यह भी कहा गया है कि प्रत्येक अवस्था में अनुच्छेद 31-ग के संरक्षण के लिए विधायी अधिनियमिति के सभी उपबंधों को अर्हित होने की

[1] [1981] 3 उम० नि० प० 305.
[2] [1981] 3 उम० नि० प० 306.
[3] [1981] 3 उम० नि० प० 307.

आवश्यकता नहीं होती बल्कि केवल उन उपबंधों को आवश्यकता होती है जिनका अनुच्छेद 39 (ख) के सिद्धांतों के साथ सीधा संबंध होता है, 'रकम' की मात्रा के अवधराण से संबंधित आक्षेपित विधान के उपबंधों को इस प्रकार संरक्षण प्राप्त नहीं है क्योंकि वे आशयित कानूनी विक्रय के अधीन तिनसुखिया कंपनी के निहित अधिकारों को प्रतिषिद्ध और निर्वापित करने के लिए ही आशयित हैं। यह कहा गया है कि विधान का उद्देश्य अनुच्छेद 39 (ख) में परिकल्पित उद्देश्यों को सुनिश्चित करने का विधिसम्मत उद्देश्य नहीं था बल्कि वह कम प्रतिष्ठित और कम दिखावटी था जिससे की याची को तारीख 23-5-1972 की कानूनी सूचना के अनुसरण में और उसके निबंधनों के अनुसार उपक्रम के विक्रय के लिए कानूनी संविदा के फायदे से वंचित किया जा सके। दलीलों के अनुसार न्यायालय उस प्रकट छद्मवेष को बेधने के लिए हकदार है जिसके अधीन अर्जित करने वाला विधान अनुच्छेद 39 (ख) के उद्देश्य सुनिश्चित करने के लिए छद्मवेश धारण कर लेता है।

54. लेकिन विरोध करने वाले प्रत्यर्थियों, असम राज्य और असम राज्य विद्युत बोर्ड, की ओर से डा० शंकर घोष और श्री जी० एल० सांघी का कहना है कि 1973 का असम अधिनियम 10 अनुच्छेद 31-ग का संरक्षण प्राप्त करने का हकदार है क्योंकि निर्विवाद, विद्युत ऊर्जा समुदाय के भौतिक संसाधन है और उपक्रम के राष्ट्रीयकरण का कोई भी विधायी उपाय अनुच्छेद 39 (ख) की परिधि में अच्छी प्रकार आ जाता है। उनका कहना है कि याची द्वारा आभासी विधान के सिद्धांत के विरुद्ध कोई भी अपील पूर्णतया असंगत है क्योंकि निस्संदेह, जहां, जैसे कि यहां, विधायी सक्षमता निर्विवाद है वहां विधानमंडल के हेतु के बारे में कोई अनुमान लगाना अननुज्ञेय है। विधानमंडल के मत्थे कोई सद्भाव नहीं मढ़ा जा सकता। प्रत्यर्थियों का यह भी कहना है कि 'रकम' की पर्याप्तता के प्रश्न को यदि छोड़ भी दिया जाए तो भी संभव 'भ्रामक' प्रकृति के प्रश्न पर भी आक्षेप नहीं किया जा सकता यदि विधि को अनुच्छेद 31-ग का संरक्षण प्राप्त है। लेकिन बलपूर्वक उनका कहना है कि 'बही मूल्य' भली-भांति स्वीकृत मूल्य की लेखा-कर्म संकल्पना है और उसे कभी भी भ्रामक नहीं कहा जा सकता, चाहे वह विधि अनुच्छेद 31-ग के अधीन न आती हो।

55. आनुक्रमिक रूप से विचारार्थ जो प्रश्न उठते हैं वे ये हैं कि क्या याची-कम्पनियों द्वारा उत्पादित और प्रदाय की गई विद्युत-ऊर्जा अनुच्छेद 39 (ख) के अर्थ के भीतर 'समुदाय का भौतिक संसाधन' है; कि क्या आक्षेपित विधान का इस भौतिक संसाधन को सामूहिक हित साधन के लिए वितरित करने के उद्देश्य से युक्तियुक्त और सीधा संबंध है और इस संबंध को अभिनिश्चित करने के लिए समुचित परीक्षण कौन से हैं। कतिपय विनिर्दिष्ट दलीलों पर जो आनुसंगिक प्रश्न उठते हैं वे तिनसुखिया कंपनी के मामले में असम राज्य विद्युत बोर्ड द्वारा उपक्रम को क्रय करने के विकल्प का प्रयोग करने के प्रभाव पर और इस बात पर केंद्रित हैं कि क्या विकल्प के प्रयोग करने पर तुरंत कंपनी के उपक्रम से संबंधित सांपत्तिक अधिकार मात्र 'अनुयोज्य दावे' या 'वाद-वस्तु' में परिवर्तित हो जाते हैं जैसा कि याचियों ने दलील दी है। इस दलील के संदर्भ में कि प्रत्येक अवस्था में, 'रकम' से संबंधित उपबंधों का अनुच्छेद 39 (ख) में परिकल्पित सिद्धांतों के साथ कोई युक्तियुक्त या सीधा संबंध नहीं हो सकता, बल्कि वे 'बोर्ड' द्वारा प्रयोग किए गए विकल्प के अनुसरण में 1910 के अधिनियम के, जैसी कि वह विधि उस समय विद्यमान थी, अधीन उपक्रम की कीमत प्राप्त करने के लिए

1989(4) eILR(PAT) SC 36

याची-कंपनी के विधिसम्मत अधिकारों को निर्वापित करने के लिए ही आशयित है, संभवत: उन विविध-तत्वों को अभिनिश्चित करना आवश्यक हो जो राष्ट्रीयकरण की विधि बनाने में सहायक है और यह कि क्या अर्जन के लिए संदेय 'रकम' के अनुमान से संबंधित उपबंध ऐसी विधि का आवश्यक और अभिन्न अंग नहीं हैं।

56. श्री रंगराजन द्वारा दी गई इस दलील के आधार पर कि इस बारे में क्या कहा जा सकता है कि अनुच्छेद 31(2) (जैसा कि वह उस समय था) के अधीन विचारार्थ क्या बचा रह जाता है, यदि विधि को अनुच्छेद 31-ग का संरक्षण प्राप्त है तो जो प्रश्न उत्पन्न होता है वह यह है कि क्या अनुच्छेद 31 के अधीन विचारार्थ कुछ बचता भी है या नहीं। नि:संदेह दलील इस न्यायालय के अनेक निर्णयों के विरुद्ध है जिनमें यह अधिकथित किया गया है कि जब अनुच्छेद 31-ग आ जाता है तब अनुच्छेद 14, 19 और 31 (अंतिम वर्णित अनुच्छेद जैसा कि वह उस समय था) चला जाता है, इस पर हम मुद्दा (ग) के अधीन विचार करेंगे।

57. इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि याची-कंपनियों के उपक्रमों द्वारा उत्पादित और वितरित विद्युत अनुच्छेद 39(ख) के प्रयोजन के लिए और उसके अर्थ के भीतर 'समुदाय के भौतिक संसाधन' गठित करती है।

58. **संजीव कोक मैन्यूफैक्चरिंग कंपनी** बनाम **भारत कोकिंग कोल लिमिटेड और एक अन्य**[1] में इस न्यायालय ने इस बात के प्रति निर्देश करते हुए कि 'समुदाय के भौतिक संसाधन' क्या हैं और क्या राज्य अभिकरणों से यथा प्रभेदित प्राइवेट अभिकरणों द्वारा उत्पादित या उनके समादेश पर उत्पादित संसाधनों से ऐसे संसाधन गठित होते हैं जो समुदाय के संसाधन हों, उस मामले में दी गई इस दलील की ओर ध्यान दिया—

> "....श्री ए०के० सेन की दलील यह थी कि प्राइवेट पक्षकारों द्वारा धारित न तो कोयला खानें और न ही कोक भट्टी संयंत्र 'समुदाय के लिए भौतिक साधन थे।' विद्वान् काउंसेल के अनुसार वे समुदाय के लिए भौतिक साधन केवल तब बन सकते थे जबकि उन्हें राज्य द्वारा अर्जित किया गया हो। समुदाय के भौतिक साधन के रूप में विशेषित होने के लिए साधनों का स्वामित्व समुदाय अर्थात् राज्य में निहित होना चाहिए।...अर्जन के लिए उपबंध करने वाली विधि वितरण की विधि नहीं थी...।" (पृष्ठ 1022)[2]

59. इस दलील का, जो 'समुदाय के भौतिक संसाधन' की सीमित संकल्पना का संकेत करती है, खंडन करते हुए इस न्यायालय ने यह संपेक्षित किया—

> "....हम श्री सेन की इस दलील की प्रशंसा करने में असमर्थ हैं। 'समुदाय के भौतिक संसाधन' अभिव्यक्ति से अभिप्रेत वे सभी चीजें हैं जो समुदाय के लिए धन पैदा करने में समर्थ हैं। इस अभिव्यक्ति का ऐसे संकीर्ण ढंग से निर्वचन करने का कोई समर्थन नहीं है जैसा कि श्री सेन ने सुझाव दिया है और यह इसे लोक धारित भौतिक स्रोतों तक सीमित करती है और प्राइवेट धारित भौतिक स्रोतों को अपवर्जित करती है। इस अभिव्यक्ति में कोई द्विभाजन अंतर्वलित नहीं है।...." (पृष्ठ 1022 और 23[3])

[1] [1983] 2 उम० नि० प० 777=[1983] 1 एस० सी० आर० 1000.
[2] [1983] 2 उम० नि० प० 806-807.
[3] [1983] 2 उम० नि० प० 807.

60. अतः इस बात का खंडन नहीं किया जा सकता कि याची के उपक्रमों द्वारा उत्पादित और वितरित विद्युत ऊर्जा से 'समुदाय के भौतिक संसाधन' गठित होते हैं।

61. अब हम इस प्रश्न पर आते हैं कि क्या 1973 के आक्षेपित असम अधिनियम 10 के उपबंधों का संविधान के अनुच्छेद 39(ख) के सिद्धांतों से कोई युक्तियुक्त और सीधा संबंध है। यह सही है कि यदि ऐसा कोई संबध केवल दूरस्थ और क्षीण है तो अनुच्छेद 31-ग के अधीन संरक्षण उपलब्ध नहीं होगा। अनुच्छेद 39 (ख) में समुदाय के भौतिक संसाधनों के वितरण की धारणा मात्र इस धारणा तक सीमित नहीं है कि आशयित हिताधिकारियों के बीच वितरण के लिए क्या ग्रहण किया जाता है। वह तो 'वितरण' का एक ढंग है। राष्ट्रीयकरण एक और ढंग है। **तमिलनाडु राज्य और अन्य बनाम एल० अबु कावुर बाई और अन्य**[1] में इस न्यायालय को इस पहलू पर विचार करने का अवसर मिला था। यह अभिनिर्धारित किया गया था—

> "दूसरे शब्दों में 'बांटना' शब्द का मात्र यह अर्थ नहीं है कि एक व्यक्ति की संपत्ति ग्रहण कर ली जाए और ऐसे भूमि सुधारों की भांति अन्य व्यक्तियों के बीच बांट दी जाए जहां बड़े भूमिदारों की भूमि ले ली जाती है और भूमिहीन श्रमिकों को दे दी जाती है।...यह बांटने का मात्र तरीका है किंतु एकमात्र तरीका नहीं है।..."
>
> "परिवहन तथा एककों का राष्ट्रीयकरण करने से यात्री गाड़ियां राज्य के दूरस्थ कोने तक जा सकेंगी तथा यथासंभव सुदूर भीतरी भागों में सुविधा प्रदान कर सकेंगी.."
>
> "इसमें लोगों के सामान्य फायदे के लिए निस्संदेह वितरण होगा और यह अनुच्छेद 39 के खंड (ख) के अंतर्गत स्पष्ट रूप से आएगा।"

62. आक्षेपित विधि की स्कीम की परीक्षा करने पर यह निष्कर्ष निकलना अवश्यंभावी हो जाता है कि विधायी उपाय उपक्रमों के राष्ट्रीयकरण का उपाय है और विधि अनुच्छेद 31-ग का संरक्षण प्राप्त करने के लिए पात्र और हकदार है।

63. उसके बाद यह दलील दी गई थी कि किसी विधि के सभी उपबंध अनुच्छेद 31-ग के संरक्षण के लिए पात्र नहीं हो सकते और न ही पात्र होने की आवश्यकता है और यह कि तदनुसार प्रस्तुत मामले में 'रकम' के अनुमान से संबंधित उपबंध को, जो 1910 के अधिनियम के उपबंधों के, जैसे कि वे उस समय थे, अनुसार संदाय प्राप्त करने के, याची-कंपनी के निहित अधिकारों को प्रतिषिद्ध और निर्वापित करने के कुटिल हेतुक की पूर्ति के लिए अभिप्रेत था, अनुच्छेद 31-ग का संरक्षण प्राप्त नहीं होना चाहिए। हमें खेद है कि यह दलील राष्ट्रीयकरण की धारणा के अविभाज्य घटक के अननुज्ञेय द्विभाजन पर आधारित है। सामाजिक और आर्थिक सुधार की आर्थिक लागत, संभवतः सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन की अत्यधिक विक्षुब्ध करने वाली समस्या है और राष्ट्रीयकरण का मर्म तत्व है। सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन के लिए ऐसे विधायी प्रयासों के लिए सांविधानिक उन्मुक्तियों की आवश्यकता सुधारों के असहनीय आर्थिक भार को अन्यथा मान्यता प्रदान करती है। इस

[1] [1984] 2 उम० नि० प० 372=(1984) 1 एस० सी० सी० 515=ए० आई० आर० 1984 एस० सी० 326.

प्रश्न पर **केशवानंद भारती के मामले**[1] में न्यायमूर्ति मैथ्यू के संप्रेक्षण को दोहराना उचित होगा—

"यदि पूर्ण प्रतिकर दिया जाना हो तो जंगम या स्थावर संपत्ति के रूप में धन के केंद्रण का स्थान नकदी के रूप में धन का केंद्रण ले लेगा और अनुच्छेद 39(ख) और (ग) में विहित उद्देश्य की पूर्ति इस परिवर्तन से कैसी होगी ? और क्या पूरा प्रतिकर देने के लिए राज्य के खजाने में पर्याप्त धनराशि होगी ?"

"...मेरे विचार से उप अनुच्छेदों में 'प्रतिकर' शब्द के स्थान पर 'राशि' शब्द रखने का एकमात्र उद्देश्य यही है कि विधि द्वारा विहित राशि का पर्याप्तता और सिद्धांतों की सुसंगतता की परख के लिए न्यायालय कोई मापमान या नियम प्रतिधारित करने से वंचित हो जाए। मेरा विचार तो यह है कि उक्त आशय के अलावा नियत या अवधारित राशि की पर्याप्तता की परख से निस्संदेह यह प्रकट होता है कि राशि का नियतन या ऐसे नियतन के लिए सिद्धांतों का अवधारण संसदीय विषय है और न्यायालय इसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकते हैं।"[2]

64. अतः राष्ट्रीयकरण की स्कीम से उन आर्थिक विचारों या घटकों को छोड़ना संभव नहीं है जिसके साथ पूर्ववर्ती जटिल रूप से एकीकृत है। राष्ट्रीयकरण की स्कीम की वित्तीय लागत उसके उर में ही समाहित है और उसे पृथक् नहीं किया जा सकता। राज्य में उपक्रमों के निहित होने से संबंधित और 'रकम' के अनुमान से संबंधित उपबंध अविभाज्य राष्ट्रीयकरण की स्कीम के अभिन्न और अपृथक्करणीय भाग हैं और वे यह अनुमति नहीं देते कि उन पर एक दूसरे से स्वतंत्र सुभिन्न उपबंधों के रूप में विचार किया जाए।

65. रिट याचिका के ज्ञापन में उपक्रमों द्वारा की गई सेवाओं की दक्षता और लोक उपयोगिता के बारे में प्रकथन किए गए हैं और यह कि उपक्रमों के ग्रहण कर लिए जाने की तारीख को तिनसुखिया और डिब्रुगढ़ उपक्रमों का बाजार मूल्य क्रमशः 55 लाख रुपए और 35 लाख रुपए था और यह कि उपक्रम उपभोक्ताओं के प्रति अपनी बाध्यताओं की दक्षता से और समाधानप्रद रूप से निर्वहन कर रहे थे। याचियों का पक्षकथन यह है कि राष्ट्रीयकरण के लिए कोई भी न्यायौचित्य नहीं था क्योंकि उपक्रम दक्ष थे और उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं को यथार्थता पूरा कर रहे थे। यह भी प्रकथन किया गया था कि स्वयं सरकार और बोर्ड ही विद्युत के उत्पादन के लिए अतिरिक्त क्षमता के प्रतिष्ठापन के लिए अपेक्षित अनुज्ञा न देकर उपक्रमों द्वारा परिकल्पित विस्तार के रास्ते में आड़े आ रहे थे। प्रत्यर्थियों ने इन आधारों का उत्खंडन करने के लिए और राष्ट्रीयकरण के उपाय को न्यायोचित ठहराने के लिए काफी प्रयास किया है।

66. हमें खेद है कि यह वाद-विवाद कि क्या स्वयं राष्ट्रीयकरण के बारे में यह समझा जाए कि वह लोक प्रयोजन को पूरा करने वाला है या यह कि क्या राष्ट्रीयकरण के बारे में यह दर्शित किया जाए कि वह ऐसे राष्ट्रीयकरण के स्वीकृत उद्देश्यों को वास्तविक रूप से प्रभावी करने के लिए न्यायोचित है—फलमूलक और सिद्धांतवादी दृष्टिकोणों के बीच चयन—अब

---

[1] [1973] 2 उम० नि० प० 159=[1973] सप्लीमेंट एस० सी० आर० 1.

[2] [1973] 2 उम० नि० प० 1012, 1010=[1973] सप्लीमेंट एस० सी० आर० 1, 846.

समाप्त हो चुका है और अब उपलभ्य नहीं है। अकादसी पधान बनाम उड़ीसा राज्य और अन्य[1] में राष्ट्रीयकरण के दर्शनशास्त्र पर यह वाद-विवाद अब समाप्त हो गया है। इस मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था—

"......मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि इस विचार-विमर्श से दृष्टिकोणों में भिन्नता प्रकट होती है। समाजवादी के लिए राष्ट्रीयकरण या राज्य स्वामित्व सिद्धांत का विषय है और उसका न्यायोचित सामाजिक कल्याण की सामान्य धारणा है। हेतु वादी के लिए राष्ट्रीयकरण या राज्य स्वामित्व आर्थिक दक्षता और उत्पादन वृद्धि से युक्त समीचीनता का विषय है.........।"

".........अनुच्छेद 19 (6) में विधानमंडल द्वारा किए गए संशोधन से यह दर्शित होता है कि विधानमंडल के अनुसार राज्य एकाधिकार के सृजन से संबंधित विधि के बारे में यह उपधारणा की जानी चाहिए कि वह जनसाधारण के हित में है.........।"

"...दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि संशोधन में अंतर्निहित सिद्धांत, जहां जहां तक कि उसका संबंध राज्य एकाधिकार की संकल्पना से है, फलमूलक दृष्टिकोण पर आधारित प्रतीत नहीं होता है बल्कि वह सिद्धांतवादी दृष्टिकोण पर आधारित प्रतीत होता है जिसे समाजवाद स्वीकार करता है.........।"

67. निस्संदेह संयुक्त राज्य अमेरिका में सारभूत सम्यक् प्रक्रिया की पूर्ण विकसित अवस्था के पश्चात् 1963 में उच्चतम न्यायालय (सुप्रीम कोर्ट) ने फर्ग्यूसन बनाम सक्रूपा[2] में यह कहा था—

"हम 'विधान की बुद्धिमत्ता को तोलने के लिए उत्कृष्ट विधानमंडल' के रूप में बैठने से इंकार करते हैं और हम उस समय तक, जब न्यायालय, जो कारबार और औद्योगिक अवस्थाओं के विनियामक थे, 'राज्य विधियों को अभिखंडित करने के लिए सम्यक् प्रक्रिया खंड का प्रयोग किया करते थे, जाने के लिए बलपूर्वक इंकार करते हैं क्योंकि वे अविवेकी, अदूरदर्शी या किसी विशिष्ट विचारधारा की शाखा के विरुद्ध हो सकते हैं.........। चाहे विधानमंडल अपनी पाठ्य पुस्तक के लिए, एडम स्मिथ, हरबर्टस्पेंसर, लार्ड केयंस या किसी अन्य को लें, इससे हमारा कोई संबंध नहीं है।"

(अधोरेखांकन जोर देने के लिए किया गया है)

68. इस धारणा पर आधारित दलील भी समान रूप से असमर्थनीय है कि क्रय करने के विकल्प के प्रयोग अव्यवहित पश्चात् उपक्रम के संबंध में तिनसुखिया कंपनी के सांपत्तिक अधिकार मात्र अनुयोज्य दावे या 'वाद-वस्तु' में परिवर्तित या स्फाटित हो गए थे और यह कि प्रस्तुत विधायी उपाय द्वारा जो कुछ अर्जित करने का प्रयास किया गया था वह मात्र 'वाद-वस्तु' था। यह दलील दी गई थी कि 'वाद-वस्तु' के अर्जन द्वारा किसी लोक प्रयोजन की पूर्ति नहीं होती है। इसके लिए परिणामों के विधिक स्वरूप और अनुषंगों की परीक्षा करना आवश्यक है जो 1910 के अधिनियम के अधीन क्रय के विकल्प के प्रयोग करने से उत्पन्न

[1] ए० आई० आर० 1963 एस० सी० 1047.

[2] (1963) 372 यू० एस० 726.

होते हैं। इस दलील में यह पूर्व कल्पित है कि अनुज्ञप्तिधारी पर सूचना की तामील के समकालीन होने से, उपक्रम के संबंध में अनुज्ञप्तिधारी के सांपत्तिक अधिकार स्वबल से मात्र 'वाद-वस्तु' में परिवर्तित हो जाते हैं। यह परिणाम 1910 के अधिनियम के उपबंधों से नहीं निकलता है। **फाजिल्का इलैक्ट्रिक सप्लाई कंपनी लिमिटेड** बनाम **आयकर आयुक्त, दिल्ली**[1] में इस न्यायालय ने विकल्प के प्रयोग से उत्पन्न होने वाले संव्यवहार की प्रकृति के प्रति निर्देश करते हुए यह कहा था—

> "इसमें केवल दोनों पक्षकारों के बीच करार की गई कतिपय कालावधियों के अवसान पर क्रय करने के विकल्प का प्रयोग करने के लिए उपबंध किया गया है और धारा 10 में आगे यह उपबंधित है कि समुचित मामले में सरकार अपने विकल्प को त्याग सकती है। इस धारा में अनुज्ञप्तिधारी द्वारा किसी करार के प्रति निर्देश के बिना और उससे स्वतंत्र रूप से अनिवार्य क्रय के लिए या अनिवार्य अर्जन के लिए कोई उपबंध नहीं किया गया है। (रिपोर्ट का पृष्ठ 505 देखिए)।
>
> (अधोरेखांकन जोर देने के लिए किया गया है)

69. **गुजरात इलैक्ट्रिसिटी बोर्ड** बनाम **शांतिलाल आर० देसाई**[2] में विकल्प के मात्र प्रयोग से जो विधिक परिणाम निकलते हैं उनके प्रति निर्देश करते हुए यह अभिनिर्धारित किया गया था—

> "......कि उपक्रम को क्रय करने का अधिकार अनुज्ञप्ति की कालावधि के अवसित होने पर ही प्रोद्भूत होता है, किंतु उस अधिकार के प्रयोग का निर्वाचन प्राधिकारी को धारा 7 (4) विहित कालावधि के भीतर ही करना होगा और उस उपधारा द्वारा यथा अपेक्षित सूचना देनी होगी.........।"[3]
>
> (अधोरेखांकन जोर देने के लिए किया गया है)

70. यह कि उपक्रम में अनुज्ञप्तिधारी के अधिकार, हक और हित, क्रय करने के विकल्प के प्रयोग मात्र पर तुरंत, यथास्थिति, बोर्ड या राज्य में अंतरित नहीं हो जाते, यह बात **गोरधा इलैक्ट्रिक कंपनी लिमिटेड और एक अन्य** बनाम **गुजरात राज्य और एक अन्य**[4] में इस न्यायालय के संप्रेक्षणों से जो कुछ भी विवक्षित है उससे और भी स्पष्ट हो जाता है। उस मामले में विद्वान् अपर महासालिसिटर द्वारा जिस प्रस्ताव पर दलीलें दी गई थीं वह इस प्रकार है—

> "इस दलील के समर्थन में कि जब एक बार उपक्रम को क्रय करने के विकल्प का प्रयोग करते हुए सूचना तामील कर दी जाती है तो अनुज्ञप्तिधारी को कारबार करने का कोई अधिकार नहीं रहता है, विद्वान् अपर महासालिसिटर ने इस न्यायालय के कल्याण सिंह **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य वाले मामले का अवलंब लिया है.........।"

[1] [1962] सप्लीमेंट 3 एस० सी० आर० 496.

[2] [1969] 1 उम० नि० प० 185=[1969] 1 एस० सी० आए० 580.

[3] [1969] 1 उम० नि० प० 192.

[4] [1975] 1 उम० नि० प० 660, 680=[1975] 2 एस० सी० आर० 42, 54.

71. इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि विकल्प के प्रयोग करने से अनुज्ञप्तिधारी के अपने कारबार को चलाने के अधिकार पर तब तक कोई ऐसा प्रभाव नहीं पड़ेगा जब तक उपक्रम को वस्तुतः ग्रहण नहीं कर लिया जाता या उसके लिए संदाय नहीं कर दिया जाता। यह अभिनिर्धारित किया गया था—

> "अनुज्ञप्तिधारी से तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि उसे कारबार करने का कोई अधिकार नहीं है जब तक कि कालावधि के समाप्त होने पर विधिमान्य क्रय नहीं किया जाता है।"

> "......यह माना गया है कि उपक्रम अनुज्ञप्तिधारी का था और यदि राज्य विद्युत बोर्ड द्वारा उपक्रम का परिदान लिया जाना था तो परिदान के पहले क्रय कीमत संदत्त की जानी चाहिए थी या उस कालावधि के लिए जिसके दौरान संदाय विधारित रहता, क्रय कीमत पर ब्याज के संदाय के लिए उपबंध होना चाहिए था अन्यथा लाइसेंस (अनुज्ञप्ति) का प्रवर्तन समाप्त नहीं होगा और अनुज्ञप्तिधारी कारबार करने के लिए हकदार होगा।" (देखिए पृष्ठ 54[1])।

72. इन दलीलों का कि विकल्प के प्रयोग करने के तुरंत पश्चात्, स्वयमेव ही, पक्षकारों के बीच संबंध देनदार और लेनदार के बीच जैसे संबंध में परिवर्तित नहीं हो जाता और यह कि उपक्रम में अनुज्ञप्तिधारी का हित 'अनुयोज्य अधिकार' या 'वाद-वस्तु' बन जाता है और यह कि किसी लोक प्रयोजन के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि उसकी पूर्ति 'वाद-वस्तु' के अर्जन से हो जाएगी, इस मामले में कोई सरोकार नहीं है।

73. अतः यह आवश्यक नहीं है कि इस प्रश्न पर विचार किया जाए कि क्या 'वाद-वस्तु' का अर्जन किया भी जा सकता है या नहीं। **मदन मोहन पाठक बनाम भारत संघ और अन्य**[2] में इस न्यायालय के कतिपय संप्रेक्षणों से यह संकेत मिलता है कि 'वाद-वस्तु' को भी अर्जित किया जा सकता है। भारतीय विधि में 'वाद-वस्तु' की विधिक संकल्पना और आंग्ल विधि के सिद्धांतों से इसकी सुभिन्नता पर विचार करने की भी आवश्यकता नहीं है।

74. विलियम्स ने अपनी कृति 'निजी संपत्ति' (पर्सनल-प्रापर्टी) में 'वाद-वस्तु' के प्रति इस प्रकार निर्देश किया है—

> "......निजी वस्तुओं के बीच एक अन्य महत्वपूर्ण सुभिन्नता विद्यमान है। ऐसी वस्तुओं के बारे में यह कहा जाता है कि वे कब्जाधीन या अनुयोजनाधीन हैं; या उन्हें फ्रांसिसी विधि में भोगाधीन वस्तु या वाद-वस्तु कहा जाता है। भोगाधीन वस्तु जंगम माल होता है जिस पर उसके स्वामी का वास्तविक कब्जा और उपभोग होता है और जिसका वह किसी अन्य व्यक्ति को दान या विक्रय द्वारा परिदान कर सकता है; मूर्त वस्तुएं जैसे पशु, कपड़े, फर्नीचर या इसी प्रकार की अन्य वस्तुएं.........।"

> "ऐसा प्रकट होता है कि 'वाद-वस्तु' पद ऐसी वस्तुओं के प्रति लागू किया गया है, जिन्हें वसूल करने या आप्त करने के लिए, यदि उन्हें सदोषतः विधारित कर लिया

[1] [1975] 1 उम० नि० प० 680-681.

[2] [1979] 1 उम० नि० प० 1252=[1978] 3 एस० सी० आर० 334,

जाता है तो कार्यवाही अवश्य की जानी चाहिए; ऐसी वस्तुएं जिनके संबंध में किसी व्यक्ति का कोई वास्तविक कब्जा या उपभोग नहीं है, बल्कि अनुयोजन द्वारा प्रवर्तनीय मात्र अधिकार है। केवल अनुयोजन द्वारा वसूलीय अत्यधिक महत्वपूर्ण निजी वस्तुएं किसी अन्य व्यक्ति से शोध्य धन था, किसी संविदा का फायदा और किसी दोष के लिए प्रतिकर; और ये सदा अत्यधिक प्रमुख वाद-वस्तुएं रही हैं यद्यपि यही केवल ऐसी वस्तुएं नहीं हैं जिनके संबंध में इस पद को लागू किया गया है·········।" (देखिए पृष्ठ 39 और 30)।

निस्संदेह आंग्ल विधि में वाद-वस्तु की यथावत् परिभाषा करने में इस तथ्य से कठिनाइयां उत्पन्न होती हैं कि इस अभिव्यक्ति से जो अर्थ तात्पर्यित है उसका समय-समय पर न्यायिक विनिश्चयों से विस्तार किया जाता रहा है और इस संकल्पना से संबंधित सिद्धांत किसी तार्किक या वैज्ञानिक आधार पर विकसित नहीं हुए थे।

75. डब्ल्यू० एस० होल्ड्सवर्थ ने भी 'वाद-वस्तु' की संकल्पना की यथावत् प्रसंगतियों को समझने में इस कठिनाई के प्रति निर्देश किया है—

"कभी-कभी उस भाव को, जिसमें विधानमंडल ने 'वाद-वस्तु' पद का उपयोग किया है, अभिनिश्चित करना कठिन हो जाता है—हमने देखा है कि बैंकरप्टसी ऐक्ट में एक दृष्टांत दिया गया है और जैसा कि हम एडवर्ड्स बनाम डिकार्ड के मामले से देख सकते हैं कि न्यायालयों द्वारा पुरःस्थापित उपांतरणों से भी कभी-कभी समान कठिनाई उत्पन्न हुई है। इनमें से कुछ कठिनाइयों को संहिताबद्ध करने वाले किसी अधिनियम द्वारा संभवतः कम किया जा सकता है जिसके लिए काफी सामग्री प्राप्त है। किंतु यह संभाव्य है कि विधि की कोई शाखा, जो संपत्ति की विधि और बाध्यता की विधि के मिलन स्थान पर आती है, सूत्रबद्ध और लागू करने को कठिन बनाने के सिवाए और कुछ नहीं हो सकती।"

(अधोरेखांकन जोर देने के लिए किया गया है)

(देखिए : दि हिस्ट्री आफ दि ट्रीटमेंट आफ चोसेस-इन-एक्शन बाई दि कामन ला, खंड 33—हारवर्ड ला रिव्यू 997, 1030)

76. लेकिन याचियों ने **बिहार स्टेट इलैक्ट्रिसिटी बोर्ड और अन्य बनाम पटना इलैक्ट्रिक सप्लाई कंपनी लिमिटेड**[1] में कलकत्ता उच्च न्यायालय के विनिश्चय का और विशिष्टतया पैरा 22 में उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के निम्नलिखित संप्रेक्षणों का दृढ़तापूर्वक अवलंब लिया—

"·········अतः 1976 के बिहार अधिनियम 7 की धारा 2 (ii) और 3 द्वारा भूतलक्षी प्रभाव से ऋण या वाद-वस्तु का भागतः तात्पर्यित अर्जन किसी लोक प्रयोजन के बिना है। धारा 2 (ii) और 3 में भी प्रतिकर के संदाय के लिए कोई उपबंध नहीं किया गया है। इन परिस्थितियों में यह अभिनिर्धारित किया जाना

[1] ए० आई० आर० 1982 कलकत्ता 74.

चाहिए कि 1976 के बिहार अधिनियम की धारा 2 (ii) और 3 संविधान के अनुच्छेद 31 (2) के अधिकारातीत हैं।"

77. इस परिस्थिति की दृष्टि से कि जहां तक यह विनिश्चय जाता है वह प्रभेदनीय है इस निर्णय की शुद्धता पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है। 5-1-1973 को विद्युत बोर्ड ने उपक्रम को क्रय करने के अपने विकल्प का प्रयोग किया था। 2-2-1974 को बोर्ड ने अनुज्ञप्तिधारी को 'लेखागत' आधार पर 36,00,000 रुपए की राशि का संदाय किया था। 6-2-1974 को कब्जा ग्रहण कर लिया गया था। 2-2-1974 को 1910 के अधिनियम की धारा 7-क को संशोधित करते हुए 1974 का अध्यादेश 50 प्रख्यापित किया गया था जिसके द्वारा धारा 7-क के अधीन संदेय कीमत को आस्तियों के बही-मूल्य तक कम किया गया था। इस अध्यादेश को दो उत्तरोत्तर अध्यादेशों द्वारा अर्थात् 1974 के अध्यादेश सं० 83 और 1974 के अध्यादेश सं० 123 द्वारा नवीकृत किया गया था। अंतिम अध्यादेश 1975 के बिहार अधिनियम 15 द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था। 10-2-1976 को भारतीय विद्युत (बिहार संशोधन) अधिनियम, 1976 [इंडियन इलैक्ट्रिसिटी (बिहार अमेंडमेंट) ऐक्ट, 1976] (1976 का 7) प्रवृत्त किया गया था जिसके द्वारा 1975 के बिहार अधिनियम 15 द्वारा 2-2-1974 से भूतलक्षी प्रभाव से धारा 6 और धारा 7-क के प्रतिस्थापन को विधिमान्यता दी गई थी। विधिमान्यकरण अधिनियम द्वारा पक्षकारों के अधिकारों और बाध्यताओं को भूतलक्षी प्रभाव से प्रभावी करने का प्रयास किया गया था। उच्च न्यायालय को यह दृष्टिकोण अपनाने के लिए प्रेरित किया गया था कि तात्पर्यित अर्जन यथार्थतः ऋण या 'वाद-वस्तु' से न कि स्वयं उपक्रम से संबंधित था। अतः प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल के इन निवेदनों पर विचार करना आवश्यक नहीं है कि वह सही तरह से विधि अधिकथित नहीं करता है क्योंकि अनुच्छेद 31-ग पर आधारित दलीलें उस मामले में न तो दी गई थीं और न ही उन पर विचार किया गया था।

78. अतः यह अभिनिर्धारित करना अपेक्षित है कि आक्षेपित विधान अर्थात् 1973 का असम अधिनियम 10 संविधान के अनुच्छेद 39 (ख) में अंतर्विष्ट सिद्धांत को सुनिश्चित करने के लिए अधिनियमित किया गया था और उसे अनुच्छेद 31-ग के अधीन संरक्षण प्राप्त है। 1973 के असम अधिनियम 9 द्वारा भारतीय विद्युत अधिनियम, 1910 के उपबंधों में किया गया संशोधन, जिसके द्वारा अनुज्ञप्ति के निबंधनों के अनुसार विकल्प के प्रयोग के अनुसरण में कानूनी क्रय की दशा में सदेय रकम के अनुमान के लिए आधार का संशोधन किया गया था, कानूनी विक्रयों के मामलों को लागू होगा और शासित करेगा और इस मामले में वह महत्वहीन नहीं हो जाएगा क्योंकि 1973 का असम अधिनियम 10 स्वयं ही—जैसा कि हमने अभिनिर्धारित किया है—विधिमान्य विधान है।

79. अतः हमें याची द्वारा दी गई दलील (क) और (ख) में कोई सार दिखाई नहीं देता है।

दलील (ग) के बारे में—

80. यह इस प्रश्न से संबंधित है कि क्या अर्जन के लिए संदेय 'रकम' के अवधारण के लिए अधिनियम में अधिकथित सिद्धांत इतने मनमाने हैं कि उनसे 'रकम' अवास्तविक और

मात्र भ्रामक हो जाती है। विधि के अनुसार याचियों के लिए यह दलील उपलभ्य नहीं है क्योंकि अर्जन का उपबंध करने वाली विधि को संविधान के अनुच्छेद 31-ग का संरक्षण प्राप्त है। 'रकम' की अभिकथित 'भ्रामक' प्रकृति के संबंध में श्री सोली जे० सोराबजी की दलीलें पूर्व कल्पित हैं और इस पूर्वावयव पर आधारित हैं कि आक्षेपित विधि को अनुच्छेद 31-ग का संरक्षण प्राप्त नहीं है। अब क्योंकि हम यह अभिनिर्धारित कर चुके हैं कि अनुच्छेद 31-ग लागू होता है इसलिए रकम की अभिकथित भ्रामक प्रकृति के संबंध में दलील का कोई अस्तित्व ही नहीं रह जाता है।

81. लेकिन श्री रंगराजन ने यह दलील दी है कि इस बात के होते हुए भी कि विधि को अनुच्छेद 31-ग का संरक्षण प्राप्त है, यह प्रश्न अनुच्छेद 31(2) के, जैसा कि वह उस समय था, अधीन अभी भी न्यायालय के विचार योग्य है यदि 'रकम' भ्रामक है या उसके अवधारण के लिए सिद्धांत मनमाने हैं। इस किंचित कठिन प्रस्ताव का समर्थन करने के लिए श्री रंगराजन ने **केशवानंद भारती के मामले**[1] में न्यायमूर्ति चंद्रचूड़ के कतिपय संप्रेक्षणों का अवलंब लिया; जिसके आशय और महत्व को, विद्वान् काउंसेल के अनुसार, पश्चात्वर्ती मामलों में पूर्णतया और उचित रूप से ग्रहण नहीं किया गया है। जिन अवतरणों का अवलंब लिया गया है वे इस प्रकार हैं—

> "................किंतु यह कहना कि किसी राशि का संबंध बाजार मूल्य से युक्तियुक्त नहीं है, इस बात के कहने से भिन्न बात है कि उसका संबंध (बाजार मूल्य से) किसी भी प्रकार का नहीं है। पश्चात्कथित दशा में जो अदायगी की जाती है, वह भ्रामक होती है और ऐसी अदायगी अनुज्ञेय चुनौती के भीतर आ सकती है।" [देखिए ए० आई० आर० 1973 एस० सी० के पृष्ठ 2051 पर पैरा 2137[2]]

> ".........न्यायालयों को अधिकार प्राप्त होगा कि वे ऐसी विधि को तब तक प्रश्नगत बना सकेंगे यदि उसके अधीन नियत की गई राशि भ्रामक है यदि ऐसी रकम का अवधारण करने के लिए कोई सिद्धांत, यदि कोई हों, अधिकथित किए गए हैं तो वे राशि को नियत करने के लिए पूरी तरह से असंगत हैं; यदि अनिवार्य अर्जन या अधिग्रहण की शक्ति का प्रयोग सांपार्श्विक प्रयोजन के लिए किया गया है; यदि ऐसी विधि अनुच्छेद 19(1)(च) में अंतर्विष्ट सांविधानिक अभिरक्षा से भिन्न सांविधानिक अभिरक्षाओं के प्रतिकूल है; या तब यदि ऐसी विधि संविधान के साथ धोखा मात्र हो।" [देखिए—ए० आई० आर० 1973 एस० सी० के पृष्ठ 2051 पर पैरा 2138[2]]

82. श्री रंगराजन का कहना है कि ये संप्रेक्षण उस विधि को भी शासित करने के लिए आशयित थे जिसे अनुच्छेद 31-ग का संरक्षण प्राप्त है। श्री रंगराजन ने **तमिलनाडु राज्य और अन्य बनाम एल० अबु कावुर बाई और अन्य**[3] में न्यायमूर्ति फजल अली के कतिपय संप्रेक्षणों का भी अवलंब लिया जो इस प्रकार हैं—

[1] [1973] 2 उम० नि० प० 159=[1973] सप्लीमेंट एस० सी० आर० 1.
[2] [1973] 2 उम० नि० प० 1168.
[3] [1984] 2 उम० नि० प० 372=(1984) 1 एस० सी० सी० 515=ए० आई० आर० 1984 एस० सी० 326.

"अत: जहां तक कि मामले के इस पहलू का संबंध है मोटे तौर पर दो निष्कर्ष निकलते हैं—

(1) यह कि अनुच्छेद 31-ग के अभिव्यक्त उपबंधों को देखते हुए, जो अनुच्छेद 31(2) को भी उस दशा में अपवर्जित करता है जब कोई संपत्ति अनुच्छेद 39(ख) और (ग) में अंतर्विष्ट सिद्धांतों को प्रभावी करने के प्रकट प्रयोजन से लोकहित में अर्जित की जाती है, कोई प्रतिकर आवश्यक नहीं है और अनुच्छेद 31(2) के कारण कोई बाधा नहीं पहुंच सकती, और

(2) यह कि यद्यपि विधि प्रतिकर का उपबंध करती है तथापि न्यायालय प्रतिकर के ब्यौरों अथवा उसकी पर्याप्तता पर विचार नहीं कर सकते और राज्य के लिए यह साबित कर देना ही पर्याप्त है कि प्रतिकर युक्तियुक्त है और इतना भयंकर या भ्रामक नहीं है जिससे कि वह न्यायलय के अत: करण को झकझोर दे।[1]

(अधोरेखांकन जोर देने के लिए काउंसेल द्वारा किया गया है)।

83. श्री रंगराजन का कहना है कि जिन संप्रेक्षणों पर बल दिया गया है उनसे यह दर्शित होता है कि चाहे अनुच्छेद 31-ग लागू भी होता हो तो भी राज्य को यह दर्शित करना चाहिए कि प्रतिकर युक्तियुक्त था न कि भ्रामक।

84. हमें खेद है कि ये अवतरण संदर्भ से बाहर उद्धृत किए गए हैं और यदि इन्हें उचित रूप से समझा जाए तो वे श्री रंगराजन द्वारा इस समय दिए गए प्रस्ताव का समर्थन करने के लिए आशयित नहीं थे। निस्संदेह केशवानंद भारती के मामले[2] में न्यायमूर्ति चंद्रचूड़ अनुच्छेद 31-ग के प्रभाव के प्रति निर्देश करते हुए यह संप्रेक्षित किया था—

"......वास्तव में अनुच्छेद 31-ग में उन सिद्धांतों को युक्तियुक्त रूप से लागू किया गया है जो कि अनुच्छेद 31(4) और (6) तथा अनुच्छेद 31-क में अंतर्विष्ट हैं ......अनुच्छेद 31-ग की वास्तविक प्रकृति और स्वरूप यह है कि वह विधान के एक वर्ग के प्रति निर्देश करता है और उसको अनुच्छेद 14, 19 और 31 के प्रवर्तन से छूट देता है.........."।[3]

85. उस मामले में न्यायमूर्ति खन्ना ने यह संप्रेक्षित किया—

"अनुच्छेद 31-क और 31-ग दोनों ही संपत्ति के अधिकार से संबंधित हैं। अनुच्छेद 31-क में कतिपय प्रकार की संपत्ति का वर्णन है और मोटे तौर पर उसका प्रभाव इस प्रकार की संपत्तियों को उन व्यक्तियों से लेने के संबंध में उपबंध करना है जिनका उक्त संपत्ति पर अधिकार है। अनुच्छेद 31-ग का उद्देश्य धन और उत्पादन साधनों के केंद्रण को रोकना और सामूहिक हित का सर्वोत्तम रूप से साधन हो, इस हेतु समुदाय की भौतिक संपत्ति के स्वामित्व और नियंत्रण के बटवारे को सुनिश्चित

[1] [1984] 2 उम० नि० प० 421-422.

[2] [1973] 2 उम० नि० प० 159=[1973] सप्लीमेंट एस० सी० आर० 1.

[3] [1973] 2 उम० नि० प० 1171=[1973] सप्लीमेंट एस० सी० आर० 995.

करना है। इस प्रकार अनुच्छेद 31-ग उस सिद्धांत का विस्तार ही है जो अनुच्छेद 31-क में माना गया है।"[1]

86. न्यायमूर्ति बेग ने यह कहा—

"अनुच्छेद 31-ग के दो भाग हैं। पहला भाग उन विधियों में से, जो कि संविधान के अनुच्छेद 39 के खंड (ख) या (ग) में विनिर्दिष्ट सिद्धांतों को सुनिश्चित करने की दृष्टि से राज्य की नीति को प्रभावी बनाने के लिए पारित की गई हो, इस आधार पर अविधिमान्य ठहराने की बुराई दूर करने से संबंधित है कि वह अनुच्छेद 14, 19 या 31 द्वारा प्रदत्त अधिकारों में से किसी से भी असंगत है अथवा उसे छीनता है या न्यून करता है।.........इस अभिकथित आधार पर कि अनुच्छेद 14, 19 या 31 का अतिक्रमण किया गया है, अविधिमान्य ठहराने का जो प्रभाव होगा वह उस सीमा तक समाप्त हो जाएगा जिस तक कि उस विधि से अनुच्छेद 39 (ख) और (ग) के सिद्धांतों को प्रभावी बनाना वस्तुतः अभिप्रेत था......।"[2]

87. **कर्नाटक राज्य** बनाम **रंगनाथ रेड्डी**[3] में इस न्यायालय को यह संप्रेक्षित करने का अवसर मिला था—

"......इन अपीलों में विचारार्थ उत्पन्न हुए मुद्दों का विनिश्चय करने के प्रयोजन के लिए इतना कह देना काफी होगा कि फिर भी केशवानंद भारती वाले मामले में न्यायाधीशों का बहुमत यह है कि अर्जित संपत्ति के लिए संदेय रकम, चाहे वह विधानमंडल द्वारा नियत की गई हो अथवा अर्जन संबंधी विधि में दिए गए सिद्धांतों के आधार पर अवधारित की गई हो, सर्वथा मनमानी और भ्रामक नहीं हो सकती। जब हम ऐसा कहते हैं तो हम अनुच्छेद 31-ग के प्रभाव को ध्यान में नहीं रखते जिससे संविधान के पच्चीसवें संशोधन द्वारा (बहुमत द्वारा अविधिमान्य घोषित किए गए भाग को छोड़कर) अंतःस्थापित किया गया है।"[4]

(अधोरेखांकन जोर देने के लिए किया गया है)

88. **संजीव कोक मैन्यूफैक्चरिंग कंपनी** बनाम **भारत कोकिंग कोल कंपनी लिमिटेड और एक अन्य**[5] में इस न्यायालय ने यह कहा—

"......श्री सेन की इस दलील को स्वीकार करना कि भेदभाव पर आधारित कोई विधि अनुच्छेद 31-ग की संरक्षण की हकदार नहीं है, इसलिए ऐसी विधि के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि यह अनुच्छेद 39 (ख) में पुष्ट नीति निदेशक तत्वों को आगे बढ़ाती है। ऐसा करना वास्तव में इस सामान्य वाक्यांश का प्रयोग

---

[1] [1973] 2 उम० नि० प० 902=[1973] सप्लीमेंट एस० सी० आर० 743.

[2] [1973] 2 उम० नि० प० 1050.

[3] [1978] 4 उम० नि० प० 324=[1978] 1 एस० सी० आर० 641.

[4] [1978] 4 उम० नि० प० 351=[1978] 1 एस० सी० आर० 653.

[5] [1983] 2 उम० नि० प० 777=[1983] 1 एस० सी० आर० 1000.

करना होगा कि उलटी गंगा पहाड़ चढ़ाई जा रही है। यह नीति निदेशक तत्वों को बढ़ाने के लिए बनाई गई कोई विधि आवश्यक रूप से गैर-भेदमूलक है या युक्तियुक्त वर्गीकरण पर आधारित है तब ऐसी विधि को ऐसे किसी संरक्षण की आवश्यकता नहीं है जो अनुच्छेद 31-ग द्वारा दिया गया है। ऐसी विधि स्वयं अपने बल से विधिमान्य होगी और इसे अनुच्छेद 31-ग से किसी सहायता की आवश्यकता नहीं है। इस बात को पुरोभाव्य शर्त बनाना कि कोई विधि जो अनुच्छेद 31-ग का आश्रय चाहती है गैर भेदमूलक या युक्तियुक्त वर्गीकरण पर आधारित होनी चाहिए, अनुच्छेद 31-ग को व्यर्थ बनाना होगा।"[1]

"हमारी यह दृढ़ राय है कि जहां अनुच्छेद 31-ग आता है वहां अनुच्छेद 14 चला जाता है·········।"[2]

89. जो अनुच्छेद 14 को लागू होता है वह अनुच्छेद 31 [जैसा कि वह संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1978 द्वारा हटा दिए जाने से पहले विद्यमान था] को भी समान रूप से लागू होता है।

90. **तमिलनाडु राज्य और अन्य** बनाम **एल० अबु० कावुर बाई और अन्य**[3] में, जिसका श्री रंगराजन ने अवलंब लिया है, न्यायमूर्ति फजल अली ने स्पष्टतया यह कहा था—

"नए जोड़े गए अनुच्छेद 31-ग को पढ़ने मात्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि अनुच्छेद 39 के खंड (ख) और (ग) में विनिर्दिष्ट नीति निदेशक सिद्धांतों को प्राप्त करने की दृष्टि से या अनुपालन करने की दृष्टि से राज्य की नीति को प्रभावी करने वाली कोई विधि शून्य नहीं समझी जाएगी भले ही वह अनुच्छेद 14, 19 या 31 के साथ असंगत हो या उसका अतिक्रमण करती हो···।"[4]

91. उसी मामले में न्यायमूर्ति फजल अली ने आगे यह कहा—

"···यदि एक बार विधि द्वारा अनुच्छेद 31-ग में वर्णित शर्तों की पूर्ति हो जाती है तो प्रतिकर का कोई प्रश्न नहीं उठता <u>क्योंकि उक्त अनुच्छेद में न केवल अनुच्छेद 14 और 19 ही अभिव्यक्त रूप से अपवर्जित हैं अपितु अनुच्छेद 31 भी, जिसमें पच्चीसवें संशोधन के आधार पर अनुच्छेद 31 (2) में 'प्रतिकर' शब्द के स्थान पर</u> 'रकम' शब्द प्रतिस्थापित किया गया है, अपवर्जित है············।"[5]

(अधोरेखांकन जोर देने के लिए किया गया है)

92. अत: श्री रंगराजन अपनी दलील के लिए न्यायमूर्ति फजल अली से कोई पुष्टि प्राप्त नहीं कर सकते।

---

[1] [1983] 2 उम० नि० प० 803=[1983] 1 एस० सी० आर० 1019.

[2] [1983] 2 उम० नि० प० 804=[1983] 1 एस० सी० आर० 1021.

[3] [1984] 2 उम० नि० प० 372=(1984) 1 एस० सी० स7० 515=ए० आई० आर० 1984एस० सी० 326.

[4] [1984] 2 उम० नि० प० 387-88=ए० आई० आर० 1984 एस० सी० 33ठ.

[5] [1984] 2 उम० नि० प० 393=ए० आई० आर० 1984 एस० सी० 334.

93. तत्पश्चात् श्री रंगराजन ने **केरल राज्य और एक अन्य बनाम ग्वालियर रेयन सिल्क मैन्यूफैक्चरिंग (वीविंग) कंपनी लिमिटेड**[1] में न्यायमूर्ति कृष्ण अय्यर के निम्नलिखित संप्रेक्षणों का अवलंब लिया—

> "....विधानमंडल से आशा यही की जाती है कि सामाजिक या ऐतिहासिक पृष्ठभूमि ही असाधारण हो तो और बात है, नहीं तो वंचित किए गए व्यक्तियों को उचित संदाय अवश्य दिलाए। न्यायिक पुनरीक्षण के अपवर्जन का उद्देश्य यह नहीं है कि अनुच्छेद 14, 19 तथा 31 के फायदाप्रद उपबंधों की राह बंद कर दी जाए।"[2]

94. किंतु हमें इन संप्रेक्षणों में ऐसा कुछ दिखाई नहीं देता जो अनुच्छेद 31-ग के अधीन संरक्षित विधि द्वारा अनुच्छेद 31 के अभिकथित अतिक्रमण की न्याय योग्यता का समर्थन करता हो। आदर्श स्वरूप संभवत: सभी मामलों में किसी ऐसे प्रतिकर को, जो न्यायसंगत और उचित हो, वंचित करना न्यायसंगत नहीं होगा। किंतु यह नहीं कहा जा सकता कि किसी ऐसी विधि के अधीन भी, जिसे अनुच्छेद 31-क या 31-ग का संरक्षण प्राप्त है, प्रतिकर की पर्याप्तता या न्यायसंगतता या उचितता तब भी न्यायालय के विचार योग्य होगी।

95. हमारी राय में श्री रंगराजन की दलील पूर्णतया असमर्थनीय है। नि:संदेह अन्य बातों के साथ-साथ अनुच्छेद 31-ग का प्रयोजन अनुच्छेद 31 को, जैसा कि वह उस समय था, अपवर्जित करना है। श्री रंगराजन की दलील को स्वीकार करने का अर्थ यह होगा कि अनुच्छेद 31-ग को उलटी ओर से लागू होने दिया जाए जिससे अनुच्छेद 31-ग का उद्देश्य ही विफल हो जाएगा और इस न्यायालय के प्रामाणिक निर्णयों की श्रृंखला में अधिकथित विधि अव्यवस्थित हो जाएगी। वस्तुत: याचियों के लिए ऐसी दलील उपलब्ध ही नहीं है।

96. यदि आक्षेपित विधि को अनुच्छेद 31-ग का संरक्षण प्राप्त नहीं है, ऐसी उपकल्पना जिस पर दलील (ग) आधारित है, तो भी रकम की पर्याप्तता या अपर्याप्तता न्यायालय के विचार योग्य नहीं है। अनुच्छेद 31 (2) में विवक्षित न्यायालय की संवीक्षा की परिसीमाओं के प्रति **केशवानंद भारती के मामले**[3] में न्यायमूर्ति मैथ्यू द्वारा निर्देश किया गया है—

> "....राशि शब्द से ऐसा कोई नियम या सिद्धांत अनुध्यात नहीं है। वह कोई भी मापमान प्रस्तुत नहीं करता है। वह कोई कसौटी विहित नहीं करता है। निरपेक्ष शब्द 'राशि' का प्रयोग सप्रयोजन किया गया है। मेरे विचार से उप अनुच्छेदों में 'प्रतिकर' शब्द के स्थान पर 'राशि' शब्द रखने का एकमात्र उद्देश्य यही है कि विधि द्वारा विहित राशि की पर्याप्तता और सिद्धांतों की सुसंगतता की परख के लिए न्यायालय कोई मापमान या नियम प्रतिपादित करने से वंचित हो जाए.........।"[4]

---

1 [1973] 3 उम० नि० प० 1222=[1974] 1 एस० सी० आर० 671.

2 [1973] 3 उम० नि० प० 1255=[1974] 1 एस० सी० आर० 695.

3 [1973] 2 उम० नि० प० 159=[1973] सप्लीमेंट एस० सी० आर० 1.

4 [1973] 2 उम० नि० प० 1010.

97. अनुच्छेद 31 (ख) के अधीन न्यायिक संवीक्षा किस-किस की की जा सकती है उसके प्रति निर्देश करते हुए **केशवानंद भारती के मामले**[1] में न्यायमूर्ति शैलत और न्यायमूर्ति ग्रोवर ने यह मत संप्रेक्षित किया—

"किंतु फिर भी विद्वान् महासालिसिटर की दलील के अनुसार 'राशि' प्राप्त करने का अधिकार मूल अधिकार बना रहता है। उसके अस्तित्व से इंकार नहीं किया जा सकता। राशि नियत करते समय किसी सिद्धांत पर चलने की बाध्यता अनुच्छेद 31 (2) और विधायी शक्ति के स्वरूप दोनों से उद्भूत होती है। ऐसी कोई शक्ति नहीं हो सकती जो लोकतांत्रिक पद्धति में शक्ति का मनमाना प्रयोग अनुज्ञात करे।"[2]

"किंतु 'राशि' नियत करने या अवधारित करने के मानक या सिद्धांत न्यायालय को बतलाने होंगे। न्यायालय का समाधान करना होगा कि 'राशि' का अर्जित या अधिगृहीत संपत्ति के मूल्य के साथ युक्तियुक्त संबंध है और एक या अधिक सुसंगत सिद्धांतों को लागू किया गया है और इसके अतिरिक्त वह 'राशि' न तो अवास्तविक ही है, न ही वह मनमानी तौर पर नियत की गई है, न ही वह ऐसी मात्रा में नियत की गई है जिसका अर्थ अनुच्छेद 31 (2) के अधीन अधिकार से पूर्णतः वंचति करने का हो। तथापि पर्याप्तता के प्रश्न पर विचार नहीं किया जा सकता है।"[3]

न्यायमूर्ति चंद्रचूड़ ने यह संप्रेक्षित किया—

"ऐसी 'राशि' की अदायगी करने संबंधी विनिर्दिष्ट दायित्व और विकल्प स्वरूप उसका अवधारण करने के लिए 'सिद्धांत' शब्द के उपयोग से यह अभिप्रेत होना चाहिए कि अदा की जाने के लिए नियत या अवधारित की गई राशि भ्रामक नहीं हो सकती। यदि संविधान में संपत्ति का अधिकार अब भी मौजूद है तो आप व्यक्ति का मजाक नहीं उड़ा सकते और उसके अधिकार का परिहास नहीं कर सकते। आप उससे यह नहीं कह सकते कि 'मैं आपकी संपत्ति कौड़ियों के भाव ले लूंगा।"[4]

98. तथापि 'बही मूल्य' की संकल्पना मूल्य की स्वीकृत लेखा-कर्म संकल्पना है। इसे भ्रामक अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता।

99. **ईश्वरी खेतान शुगर मिल्स (प्राइवेट) लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**[5] में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि 'अवलिखित मूल्य' की संकल्पना भी, जो कि स्वामी के लिए 'बही मूल्य' से अधिक अहितकर है, असंगत नहीं है—

"......वस्तुतः इस न्यायालय ने यह स्वीकार किया है कि मशीनरी के लिए आयकर विधि के अनुसार परिकलित अवलिखित मूल्य के आधार पर प्रतिकर का संदाय, प्रतिकर अवधारित करने के सिद्धांत के रूप में विसंगत नहीं है। ऐसा प्रतीत

---

[1] [1973] 2 उम० नि० प० 159=[1973] सप्ली० एस० सी० आर० 1.

[2] [1973] 2 उम० नि० प० 405.

[3] [1973] 2 उम० नि० प० 406.

[4] [1973] 2 उम० नि० प० 1168.

[5] [1981] 1 उम० नि० प० 1152, 1198-99=[1980] 3 एस० सी० आर० 331, 359.

होता है कि प्रयुक्त मशीनरी का मूल्यांकन करने के लिए ही यह सिद्धांत अपनाया गया है, यद्यपि विधान में प्रत्येक उपक्रम को संदेय प्रतिकर पूर्णांकों में नियत किया गया है……।"

100. तदनुसार यदि आक्षेपित विधि को अनुच्छेद 31-ग का संरक्षण प्राप्त नहीं है और समुचित और उपलभ्य परीक्षण लागू भी किए गए हैं तो भी इस मामले की परिस्थितियों में यह नहीं कहा जा सकता कि आक्षेपित विधि में परिकल्पित सिद्धांत ऐसी 'रकम' की ओर ले जाते हैं जिसे अवास्तविक या भ्रामक कहा जा सकता है। तदनुसार दलील (ग) याचियों के विरुद्ध अभिनिर्धारित की जाती है और उनके विरुद्ध उत्तर दिया जाता है।

दलील (घ) के बारे में—

101. यह मुद्दा केवल तभी उपलभ्य है यदि आक्षेपित विधि अनुच्छेद 31-ग के बाहर है। इस दलील की कि 'सेवा लाइनें' (सर्विस लाइन्स), जिन्हें अभिव्यक्त रूप से मूल्यांकन से अपवर्जित किया गया है, अनुज्ञप्तिधारी की संपत्ति गठित करती हैं और उनका मूल्यांकन से अपवर्जन 'रकम' के अवधारण के लिए सिद्धांतों को मनमाना बना देगा, प्रशंसा करने के लिए कोई खास बात नहीं है। याची के विद्वान् काउंसेल ने 1910 के अधिनियम की धारा 2(ढ) में 'संकर्म' की परिभाषा का और **कलकत्ता इलैक्ट्रिसिटी सप्लाई कारपोरेशन बनाम धनकर आयुक्त, पश्चिमी बंगाल**[1] में इस न्यायालय के निर्णय का अवलंब लिया है। उस मामले में प्रश्न यह था कि क्या अनुज्ञप्तिधारी के शुद्ध धन की संगणना करने में 'सेवा लाइनों' को शामिल किया जाना चाहिए। वह एक विलोम मामला था जिसमें अनुज्ञप्तिधारी ने विद्युत अधिनियम के कानूनी उपबंधों का अवलंब लेते हुए यह दलील दी थी कि 'सेवा लाइनें' उसके धन का भाग नहीं थीं। इस न्यायालय ने धनकर के निर्धारण के प्रयोजनों के लिए उस दलील को नकार दिया। विद्वान् काउंसेल ने इस प्राधिकारपूर्ण निर्णय का यह दलील देने के लिए कुछ अवलंब लिया कि मूल्यांकन से इस 'धन' का अपवर्जन मनमाना है।

102. किंतु हमारी राय में जिस प्राधिकारपूर्ण निर्णय का अवलंब लिया गया है उससे इस मुद्दे पर याची का मामला आगे नहीं बढ़ता। जबकि यह सही है कि 1910 के अधिनियम की धारा 2 (ढ) में 'संकर्म' अभिव्यक्ति में 'सेवा लाइनें' शामिल हैं तथापि 'सेवा लाइनों' को 'रकम' के अवधारण के प्रयोजनों के लिए मूल्यांकन से न्याय्य रूप से अपवर्जित करने के लिए क्या कारण है यह रिपोर्ट के पृष्ठ 166[2] पर इंगित किया गया है—

> "यह सच है कि इलैक्ट्रिसिटी ऐक्ट की धारा 7 (ए) (2) की दृष्टि से, ऐक्ट की धारा 5 की उपधारा (1) के अधीन विक्रीत उपक्रम के बाजार-मूल्य की संगणना करने में ऐसी 'सर्विस लाइनों' का मूल्य, जिसकी संरचना उपभोक्ताओं के खर्चे पर की गई हो, विचार में नहीं लिया जाएगा। इस उपबंध के लिए जो कारण है, वह स्पष्ट है। नए अनुज्ञप्तिधारी का यह कर्तव्य होगा कि वह न केवल उन लाइनों का रखरखाव तथा उनकी मरम्मत करे बल्कि उन्हें उस समय बदल दे जबकि वे सर्विस के लायक न रह जाएं।"

[1] [1971] 3 उम० नि० प० 902=[1972] 1 एस० सी० आर० 159.

[2] [1971] 3 उम० नि० प० 910-11.

103. विधि के अधीन जब विद्युत ऊर्जा के लिए आशयति उपभोक्ता द्वारा कोई अध्यपेक्षा की जाती है तब अनुज्ञप्तिधारी की यह बाध्यता होती है कि वह सेवा लाइनें बिछाए। किंतु उपबंधों के अनुसार सेवा लाइनों का समस्त खर्च अनुज्ञप्तिधारी द्वारा वहन किया जाना अपेक्षित नहीं होता। अनुज्ञप्तिधारी विद्युत प्रदाय अधिनियम की अनुसूची के उपबंधों के अनुसार उपभोक्ता से यह अपेक्षा करने के लिए हकदार होता है कि वह सेवा लाइनों के खर्च के कुछ भाग का संदाय करे—जो किसी अमुक मामले में पर्याप्त भाग हो सकता है।

104. ऐसे ही उपबंधों पर विचार करते हुए गुजरात उच्च न्यायालय ने **डाकोर-उमरेथ इलैक्ट्रिसिटी कंपनी लिमिटेड** बनाम **गुजरात राज्य**[1] में यह अभिनिर्धारित किया :—

> "......प्रश्न यह है कि क्या मूल्यांकन से ऐसी सेवा लाइनों के अपवर्जन के बारे में यह कहा जा सकता है कि उससे प्रतिकर का सिद्धांत असंगत या अनुचित बन गया है। हमारे विचार में ऐसा नहीं है......। याची सभी प्रयोजनों के लिए इन सेवा लाइनों का स्वामी नहीं बन जाता है। इसके अतिरिक्त क्रय करने के पश्चात् भी इन सेवा लाइनों का उन उपभोक्ताओं को, जिन्होंने उसके लिए संदाय किया है, विद्युत ऊर्जा का प्रदाय करने के लिए उपयोग किया जाता रहेगा। इन परिस्थितियों में इन सेवा लाइनों के लिए याची को प्रतिकर का संदाय करने के लिए उपबंध करना अत्यधिक असाम्यिक होगा। तर्क या सिद्धांत के रूप में ऐसा कोई कारण नहीं है कि क्यों याची को इन सेवा लाइनों के अंतरण से अनुचित और अनर्ह लाभ कमाने की इजाज़त दी जाए जिनके लिए उसने कुछ भी संदत्त नहीं किया है और जो उसके स्वयं के श्रम का उत्पाद नहीं है।......"

105. सादर हम यह कह सकते हैं कि यह तर्क ठोस है और इसे स्वीकार किया जाना चाहिए। अतः दलील (घ) निःसार है और इसका उत्तर याचियों के विरुद्ध दिया जाता है।

दलील (ङ) के बारे में—

106. इस प्रश्न पर याचियों की आशंका यह है कि 1973 के आक्षेपित अधिनियम 10 की धारा 9 (1) (झ) के अधीन सरकार 'रकम' से ऐसी राशियां कटौती करने की हकदार होगी जो 'टैरिफ और लाभांश नियंत्रण आरक्षित' (टैरिफ्स एंड डिवीडेंड कंट्रोल रिजर्व), 'आकस्मिकता आरक्षिति' (कांटिनजेंसी-रिजर्व) में अवशिष्ट रह जाती हैं, जहां तक कि ऐसी रकमें अनुज्ञप्तिधारियों द्वारा सरकार को संदत्त न कर दी गई हों, लेकिन यह उपबंध ऐसे मामलों को ध्यान में नहीं लेता और उपबंधित नहीं करता है कि जहां ऐसी आरक्षितियां 'स्थिर आस्तियों' में विनिहित हैं और ऐसा होने के कारण 'स्थिर आस्तियां' अर्जन के अधीन सरकार में निहित हैं। अतः यह कहा गया है कि इस निमित्त अनुज्ञप्तिधारी के दायित्व की इस अर्थ में द्विरावृत्ति होगी कि जबकि स्थिर आस्तियों के रूप में 'आरक्षितियां' सरकार में निहित हैं, अनुज्ञप्तिधारी लेखाओं में दर्शित रकम की कटौती करने के दायित्व से मुक्त नहीं है। धारा 9 (1) (झ) में यह उपबंधित है—

[1] 13 गुजरात ला रिपोर्टर 88, 106.

*"कुल रकम से कटौतियां : सरकार अनुज्ञप्तिधारी को इस अधिनियम के अधीन संदेय कुल रकम में से निम्नलिखित राशियों की कटौती करने की हकदार होगी—

(क) से (ज) अनावश्यक होने के कारण लोप किया गया है।

(झ) टैरिफ और लाभांश नियंत्रण आरक्षिति, आकस्मिकता आरक्षिति और विकास आरक्षिति में अवशिष्ट रकमें, जहां तक ऐसी रकमें अनुज्ञप्तिधारी द्वारा सरकार को संदत्त न कर दी गई हों।

(ञ) से (ट) अनावश्यक होने के कारण लोप किया गया।"

107. युक्तियुक्त अर्थान्वयन के आधार पर 'अवशिष्ट रकमें' और 'जहां तक ऐसी रकमें संदत्त न कर दी गई हों' अभिव्यक्तियां इन 'आरक्षितियों' के लिए अनुज्ञप्तिधारी की लेखादेयता की ऐसी किसी द्विरावृत्ति को आवश्यकत: अपवर्जित कर देती हैं। यदि आरक्षितियों का कोई भाग 'स्थिर आस्तियों' में 'विनिहित किया जाता है और ऐसी 'स्थिर आस्तियों के रूप में आरक्षितियां अर्जन के अनुसरण में सरकार द्वारा ग्रहण कर ली जाती हैं तो अनुज्ञप्तिधारी द्वारा जिस बात का लेखा-जोखा देना रह जाता है वह केवल संबद्ध लेखाओं में अवशिष्ट रकमें ही होती हैं। 'रकम' में से 'आरक्षितियों' की कटौती के लिए अनुज्ञप्तिधारी का दायित्व केवल तभी उदभूत होगा यदि उन लेखाओं में अवशिष्ट शेष रकम का संदाय न किया गया हो। निःसंदेह असम राज्य के विद्वान् काउंसेल डा० शंकर घोष ने यह निवेदन किया है कि अधिनियम की धारा 9(1)(झ) का यही सही निर्वचन है। उपबंध के इस अर्थान्वयन के अनुसार याची कंपनी की इस प्रश्न पर दलील कायम नहीं रहती है।

108. इस मुद्दे के अधीन जो अन्य दलील दी गई है वह यह है कि अनुज्ञप्तिधारियों की उस संपत्ति को, जो अनुज्ञप्ति के अपर्यवसित भाग के रूप में है, अर्जन के लिए संदेय रकम की संगणना करते समय हिसाब में नहीं लिया गया है। जैसा कि पहले ही संकेत किया जा चुका है कि चूंकि विधि को अनुच्छेद 31-ग का संरक्षण प्राप्त है इसलिए यह दलील दी ही नहीं जा सकती।

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :—

"Deduction from the Gross amount : The Governm ent shall be entitled to deduct the following sums from the gross amount payable under this Act to the licensee—

(a) to (h) omitted as unnecessary.

(i) The amounts remaining in tariffs and dividends control reserve, contingencies reserve and development reserve, in so far as such amounts have not been paid over by licensee to the Government :

(j) to (k) omitted as unnecessary."

109. आक्षेपित अधिनियम की धारा 7(3) में यह उपबंधित है—

*"किसी ऐसे उपक्रम की दशा में जो इस अधिनियम के अधीन सरकार में निहित है, विद्युत अधिनियम के भाग II के अधीन उसे प्रदान की गई अनुज्ञप्ति के बारे में यह समझा जाएगा कि वह निहित होने की तारीख को समाप्त हो गई है और उस तारीख से पूर्व विद्युत प्रदाय करने के लिए किए गए किसी करार के अधीन अनुज्ञप्तिधारी के सभी अधिकार, दायित्व और बाध्यताएं सरकार को न्यागत हो जाएंगी या न्यागत हो गई समझी जाएंगी :

परंतु जहां कोई ऐसा करार सरकार द्वारा अनुमोदित और निहित होने की तारीख को प्रवृत्त प्रदाय की दरों और शर्तों के अनुरूप नहीं है वहां वह सरकार के विकल्प पर शून्यकरणीय होगा।"

110. यह उपबंध राष्ट्रीयकरण की स्कीम का एक भाग है और अनुच्छेद 31-ग द्वारा संरक्षित है।

111. तदनुसार दलील (ङ) याचियों के विरुद्ध अभिनिर्धारित की जाती है और उनके विरुद्ध उत्तर दिया जाता है।

दलील (च) के बारे में—

112. यह दलील प्रबंध ग्रहण कर लिए जाने के पश्चात् निहित होने की तारीख से एक वर्ष के भीतर यथास्थिति सरकार या 'बोर्ड' द्वारा छंटनी किए गए कर्मचारियों को संदेय रकमों के बारे में अधिनियम की धारा 11(3) के अधीन अनुज्ञप्तिधारी के दायित्व से संबंधित है। धारा 11(3) में उपबंधित है कि यदि, यथास्थिति, बोर्ड या सरकार निहित होने की तारीख से एक वर्ष की कालावधि के भीतर किसी कर्मचारी की छंटनी करती है तो छंटनी किए गए कर्मचारी को संदेय रकमों के लिए दायित्व की 'रकम' से कटौती की जाएगी। यह दलील दी गई है कि यह उपबंध ऐसा दायित्व अधिरोपित करता है जो मनमाना है। डा० शंकर घोष ने यह निवेदन किया कि यह प्रश्न नितांत शास्त्रीय प्रश्न है क्योंकि छंटनी का कोई मामला हुआ ही नहीं है। डा० घोष ने आगे यह निवेदन किया कि यह उपबंध अयुक्तियुक्त नहीं है क्योंकि

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :—

"In the case of an undertaking which vests in the Government under this Act, the license granted to it under Part II of the Electricity Act shall be deemed to have been terminated on the vesting date and all the rights, liabilities and obligations of the licensee under any agreement to supply electricity entered into before that date shall devolve or shall be deemed to have devolved on the Government :

Provided that where any such agreement is not in conformity with the rates and conditions of supply approved by the Government and in force on the vesting date, the agreement shall be viodable at the option of the Government."

इस प्रकार छंटनी किए गए कर्मचारियों की दशा में संदेय रकमें सारतः उस कालावधि से संबंधित होंगी जिसके दौरान नियोजन अनुज्ञप्तिधारी के अधीन अस्तित्व में रहा था और यह इस परिस्थिति को अनुज्ञप्तिधारी के दायित्व के चालू रहने में हिसाब में लेना अयुक्तियुक्त नहीं होगा जो अन्यथा भी सारतः अनुज्ञप्तिधारी का ही दायित्व होगा। इस विषय पर विचार करने पर हम यह दृष्टिकोण अपनाना चाहते हैं—चाहे यह प्रश्न न्यायालय के विचार योग्य भी हो—तो भी यह उपबंध अयुक्तियुक्त या मनमाना नहीं है क्योंकि यह दायित्व का निरंतर बना रहना परिकल्पित करता है जो अन्यथा सारतः अनुज्ञप्तिधारी का दायित्व था। इस दलील (च) में भी कोई गुणागुण नहीं है।

दलील (छ) के बारे में—

113. इस पहलू पर याचियों की शिकायत कानूनी उपबंधों के प्रभाव के संपूर्ण भ्रम पर आधारित है। सारतः दलील यह दी गई है कि जबकि अनुज्ञप्तिधारी के कुछ दायित्व, जो उसके पूर्वतन कारबार प्रचालन से उद्भूत होते हैं, सरकार द्वारा अभिव्यक्त रूप से ग्रहण नहीं किए गए हैं और उसे अनुज्ञप्तिधारी के अस्तित्वशील और चालू रहने वाले दायित्व घोषित किया गया है लेकिन धारा 9(7) उन लेनदारों को, जिनके लेखे और जिनके फायदे के लिए कटौतियां की जाती हैं, रकम का संदाय करने के सरकार की ओर से किसी तत्समान कानूनी बाध्यता के बिना और उस निमित्त याचियों के अभिव्यक्त कानूनी उन्मोचन के लिए कोई उपबंध किए बिना 'रकम' में से उन्हीं दायित्वों में से कुछ की कटौती करना प्राधिकृत करती है।

114. इस दलील में कोई सार नहीं है। विधायी आशय स्पष्ट और सुव्यक्त है। यद्यपि निहित होने से पूर्व अनुज्ञप्तिधारियों के कारबार के संचालन में से उद्भूत होने वाले कुछ दायित्व सरकार द्वारा ग्रहण नहीं किए गए हैं तथापि उनमें से कुछ दायित्व रकम में से कटौती किए जाने के लिए प्राधिकृत किए गए हैं। इस उपबंध का प्रयोजन इतना स्पष्ट है कि उन बाध्यताओं की कोई कानूनी घोषणा अपेक्षित नहीं है जो विधि में उद्भूत होती हैं और सरकार के हाथ आने वाली और उसके द्वारा प्रतिधारित की जाने वाली राशियों से संलग्न हैं। स्पष्टतः यह उपबंध सरकार के हाथों में अनुचित संवृद्धि के लिए आशयित नहीं है। स्पष्टतः प्रयोजन लोक संस्थाओं आदि को देय कुछ प्रकार के ऋणों की वसूली सुकर बनाने के लिए है और कटौती उन लेनदार-संस्थाओं के फायदे के लिए है। स्पष्टतया सरकार इस प्रकार कटौती की गई राशियों का संपृक्त लेनदारों को संदाय करने की विधिक बाध्यता के अधीन होगी। कानून के उपबंधों को विधि के उन साधारण सिद्धांतों के साथ और उनके अनुकूल पढ़ा जाना चाहिए जो सरकार की ओर से ऐसी बाध्यताएं और याचियों के दायित्वों में से ऐसी कटौतियों की सीमा तक उनका विवक्षित तत्समान उन्मोचन द्योतित करते हैं। सरकार के हाथ में यह पारिणामिक कानूनी-न्यास है कि वह इस प्रकार कटौती की गई राशियों का संदाय लेनदारों को करे, चाहे कानून में इस निमित्त अभिव्यक्त उपबंधों के अभाव में विधि के साधारण सिद्धांत क्रियान्वित होते हों। अर्थान्वयन के अनुसार यह अभिनिर्धारित किया जाना अपेक्षित है कि ये बाध्यताएं और परिणाम निकलते हैं। वस्तुतः इस संबंध में न्यायालय के विचार योग्य कोई शिकायत नहीं है। तदनुसार दलील (छ) याचियों के विरुद्ध अभिनिर्धारित की जाती है और उनके विरुद्ध उत्तर दिया जाता है।

दलील (ज) और (झ) के बारे में—

115. ये दोनों दलीलें अधिनियम के उपबंधों के अनुसार रकम के अवधारण के लिए आवश्यक प्रश्नों पर विवादों के निपटारे के लिए आक्षेपित विधि के अधीन परिकल्पित और स्थापित तंत्र के बारे में हैं। सारत: याचियों की दलील यह है कि धारा 9(ग), (घ) और (ङ) के अधीन रकमों के अवधारण के लिए और धारा 8 में निर्दिष्ट हानि का निर्धारण करने के लिए अधिनियम के अधीन कोई तंत्र स्थापित नहीं किया गया है।

116. इस प्रश्न पर अन्य दलील यह है कि माध्यस्थम् खंड सीमित खंड है और वह अधिनियम की धारा 20 की उपधारा (1) के खंड (क) से (घ) में विनिर्दिष्टतया प्रगणित चार विषयों से संबंधित विवादों तक ही सीमित है।

117. यह दलील दी गई है कि कानून में इन कमियों से 'रकम' के अवधारण के लिए अधिनियम की स्कीम अयुक्तियुक्त बन जाती है और 'कुल रकम' के अवधारण से संबंधित 'अधिनियम' की स्कीम, उसमें से की जाने वाली कटौतियां और अर्जन के लिए संदेय 'रकम' का निर्धारण अव्यावहारिक बन जाता है।

118. न्यायालय दृढ़ता से ऐसे अर्थान्वयन का विरोध करते हैं जो किसी कानून को नि:सारता की कोटि में ला देता है। किसी कानून के उपबंध का अर्थान्वयन इस प्रकार किया जाना चाहिए जिससे कि वह उसे 'अमान्य से मान्य करना अच्छा है' के सिद्धांत पर प्रभावी और प्रवर्तनशील बना दे। नि:संदेह यह सही है कि यदि कोई कानून नितांतत: अस्पष्ट है और उसकी भाषा पूर्णतया पेचीदा है और नितांतत: अर्थहीन है तो वह कानून अस्पष्टता के कारण शून्य घोषित किया जा सकता है। यह अनुच्छेद 14 के अधीन मनमानेपन या अयुक्तियुक्तता के लिए विधि का परीक्षण करने के लिए न्यायिक पुनर्विलोकन में नहीं आता बल्कि किसी कानून की भाषा पर विचार करने वाला अर्थान्वयन न्यायालय कानून का ऐसा अर्थ और प्रयोजन अभिनिश्चित करने के लिए और ऐसा अर्थ देने के लिए करता है जो विधानमंडल आशय देना चाहता था। **मंचेस्टर शिप कैनल कंपनी** बनाम **मंचेस्टर रेसकोर्स कंपनी**[1] में न्यायाधीश फेयरवैल ने यह कहा—

> "जब तक कि शब्द नितांतत: इतने भावहीन नहीं हैं कि मैं उनसे कुछ भी नहीं कर सकता तब तक मुझे उनमें से कुछ अर्थ निकालने के लिए और अनिश्चितता के कारण उन्हें शून्य घोषित न करने के लिए आबद्ध होना चाहिए।" (देखिए पृष्ठ 360 और 361)

119. **फासेट प्रापर्टीज** बनाम **बकिंघम काउंटी कौंसिल**[2] लार्ड डेनिंग ने न्यायाधीश फेयरवैल के विनिश्चय का अनुमोदन करते हुए यह कहा:

> "किंतु जब किसी कानून का कुछ अर्थ हो, चाहे वह अस्पष्ट हो, या अनेक अर्थ हों, चाहे उनमें से चुनने के लिए कहुत कम हो, तो भी न्यायालयों को उस कानून को अकृतता के रूप में नामंजूर करने की बजाए यह बताना होगा कि उसका अर्थ क्या है।" (देखिए पृष्ठ 516)

---

[1] (1904) 2 चांसरी 352.

[2] (1960) 3 आल इंग्लैंड रिपोर्ट्स 503.

120. अत: यह न्यायालय का कर्तव्य है कि वह उस कानून का अर्थ निकाले जो वह यह जानते हुए निकाल सकता है कि कानून प्रवर्तनशील होने के लिए होते हैं न कि असंगत होने के लिए और कोई भी ऐसी असंभव बात नहीं होनी चाहिए जो न्यायालय को यह घोषित करने के लिए इजाजत दे कि कानून अव्यावहारिक है। **विटने बनाम इनलैंड रेवेन्यू कमिश्नर**[1] में लार्ड ड्यूनेडिन ने यह कहा—

> "कोई कानून व्यावहारिक होने के लिए बनाया जाता है और उसका किसी न्यायालय द्वारा निर्वचन उस उद्देश्य को सुनिश्चित करने के लिए किया जाना चाहिए जब तक कि कोई महत्वपूर्ण लोप या स्पष्ट निदेश उस लक्ष्य को अप्राप्य न बना देता हो। (देखिए पृष्ठ 52)

121. प्रस्तुत कानून पर विचार करने के पश्चात् इस दृष्टिकोण का समर्थन करना संभव नहीं है कि आक्षेपित विधि में धारा 9 के खंड (ग), (घ) और (ङ) में निर्दिष्ट राशियों के सम्यक् अभिनिश्चयन के लिए कोई तंत्र परिकल्पित नहीं है, जिनमें यह अपेक्षित है कि ऐसे अभिनिश्चयन और अनुमान पर कुल रकम से कटौतियां की जानी चाहिए। धारा 10 के अधीन सरकार को यह व्यादेश दिया गया है कि वह लेखाओं से संबंधित विषयों में पर्याप्त ज्ञान और अनुभव रखने वाले व्यक्ति को धारा 9 में वर्णित कटौतियां करने के पश्चात् अनुज्ञप्तिधारी को सरकार द्वारा इस अधिनियम के अधीन संदेय शुद्ध रकम का निर्धारण करने के लिए नियुक्त करे। धारा 10 की उपधारा (2) में यह उपबंधित है कि विशेष अधिकारी, सरकार या बोर्ड या उपक्रम के किसी ऐसे अधिकारी या कर्मचारिवृंद से, जिसे वह ठीक समझे, 'संदेय शुद्ध रकम का निर्धारण करने में' सहायता के लिए अपेक्षा कर सकता है। इन उपबंधों में ऐसे विशेष अधिकारी द्वारा, जिसे अधिनियम के अधीन कानूनी प्राधिकारी के रूप में गठित किया गया है, संदेय शुद्ध रकम का अवधारण करना अनुध्यात है। विशेष अधिकारी के कृत्यों के अंतर्गत कटौतियों के विषय में सरकार द्वारा किए गए सभी अवधारणों की शुद्धता की परीक्षा करना आता है सिवाए वहां के जहां सरकार अधिनियम के अधीन कतिपय विषयों के संबंध में अपील प्राधिकारी के रूप में कानूनी तौर पर विनिर्दिष्टतया गठित की गई है।

122. धारा 8 और 9 के परंतुक में यह परिकल्पित है कि सरकार द्वारा अनुज्ञप्तिधारी को पूर्व सूचना जारी की जानी चाहिए कि वह, यथास्थिति, धारा 8 या 9 के अधीन की जाने के लिए प्रस्थापित किसी कटौती के विरुद्ध, परंतुकों में विनिर्दिष्ट कालावधि के भीतर, हेतुक दर्शित करे। सरकार द्वारा ऐसी रकमों का, जो उसके अनुसार कुल रकम में से कटौती किए जाने योग्य हैं, ऐसा अवधारण कर लेने के पश्चात् भी ऐसा अवधारण अंतिम नहीं होगा। अनुज्ञप्तिधारी को संदेय शुद्ध रकम का निर्धारण 'विशेष अधिकारी' द्वारा किया जाना होगा। यह अर्थान्वयन करना युक्तियुक्त होगा कि धारा 8 और 9 के अधीन सरकार द्वारा किया गया विनिश्चय, अनुज्ञप्तिधारी को सुने जाने का अवसर दिए जाने के पश्चात् भी, अंतिम नहीं होगा बल्कि अंतिम अवधारण अधिनियम की धारा 10 के अधीन नियुक्त 'विशेष अधिकारी' द्वारा किया जाना होगा। अधिनियम की धारा 10(1) और (2) का अर्थान्वयन इस प्रकार किया जाना चाहिए जिससे कि 'विशेष अधिकारी' इस बात के लिए समर्थ हो सके कि वह सरकार द्वारा अधिनियम की धारा 9 और 10 के अधीन की गई कटौतियों के संबंध में

[1] (1926) ए० सी० 37.

• 1989(4) eILR(PAT) SC 36

अवधारणों को हिसाब में ले सके और उस विषय पर अपना विनिश्चय कर सके। आवश्यक विवक्षा द्वारा शुद्ध रकम का 'निर्धारण' करने की शक्ति में कुल रकम में से कटौतियों के विषय में सरकार द्वारा किए गए अवधारण की विधिमान्यता की परीक्षा करने की शक्ति भी शमिल है। आवश्यक विवक्षा द्वारा संदेय 'शुद्ध रकम' के अवधारण और निर्धारण की शक्ति के अंतर्गत धारा 8 और 9 में परिकल्पित विषय भी आते हैं। यद्यपि धारा 10 की उपधारा (1) में विनिर्दिष्टतया केवल धारा 9 ही निर्दिष्ट की गई है तथापि उपधारा (1) और (2) की भाषा के, जो विशेष अधिकारी को संदेय शुद्ध रकम का 'निर्धारण' करने के लिए समर्थ बनाती है, अनुसार आवश्यक विवक्षा द्वारा यह शक्ति भी है कि धारा 8 के अधीन भी की गई कटौती की विधिमान्यता और शुद्धता का विनिश्चय करे। इस प्रकार अर्थान्वयन करने पर धारा 10 के उपबंध अनुज्ञप्तिधारी को संदेय 'शुद्ध रकम' के निर्धारण के लिए युक्तियुक्त रूप से पर्याप्त तंत्र उपलभ्य हो जाएगा।

123. जहां तक माध्यस्थम् का संबंध है, 'विशेष अधिकारी' के विनिश्चय के पश्चात् भी ऐसे विनिर्दिष्ट क्षेत्रों के संबंध में, जिनमें धारा 20 के अधीन विवाद माध्यस्थम् योग्य बन जाते हैं, विवादों के विनिश्चय के लिए अतिरिक्त माध्यस्थम् मंच भी मौजूद है।

124. इन परिस्थितियों की दृष्टि में हमारा यह विचार है कि इन मुद्दों/प्रश्नों पर याचियों की शिकायत सारवान् नहीं है। तदनुसार मुद्दा (ज) और (झ) याचियों के विरुद्ध अभिनिर्धारित किए जाते हैं और उनके विरुद्ध उत्तर दिया जाता है।

125. परिणामतः पूर्वगामी कारणों के आधार पर याचियों द्वारा आक्षेपित विधानों को दी गई चुनौती के समर्थन में उनकी सभी दलीलें असफल होती हैं। तदनुसार रिट याचिकाएं खारिज की जाती हैं, किंतु परिस्थितियों के अनुसार खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं दिया जाता है।

रिट याचिकाएं खारिज की गईं।

दे०